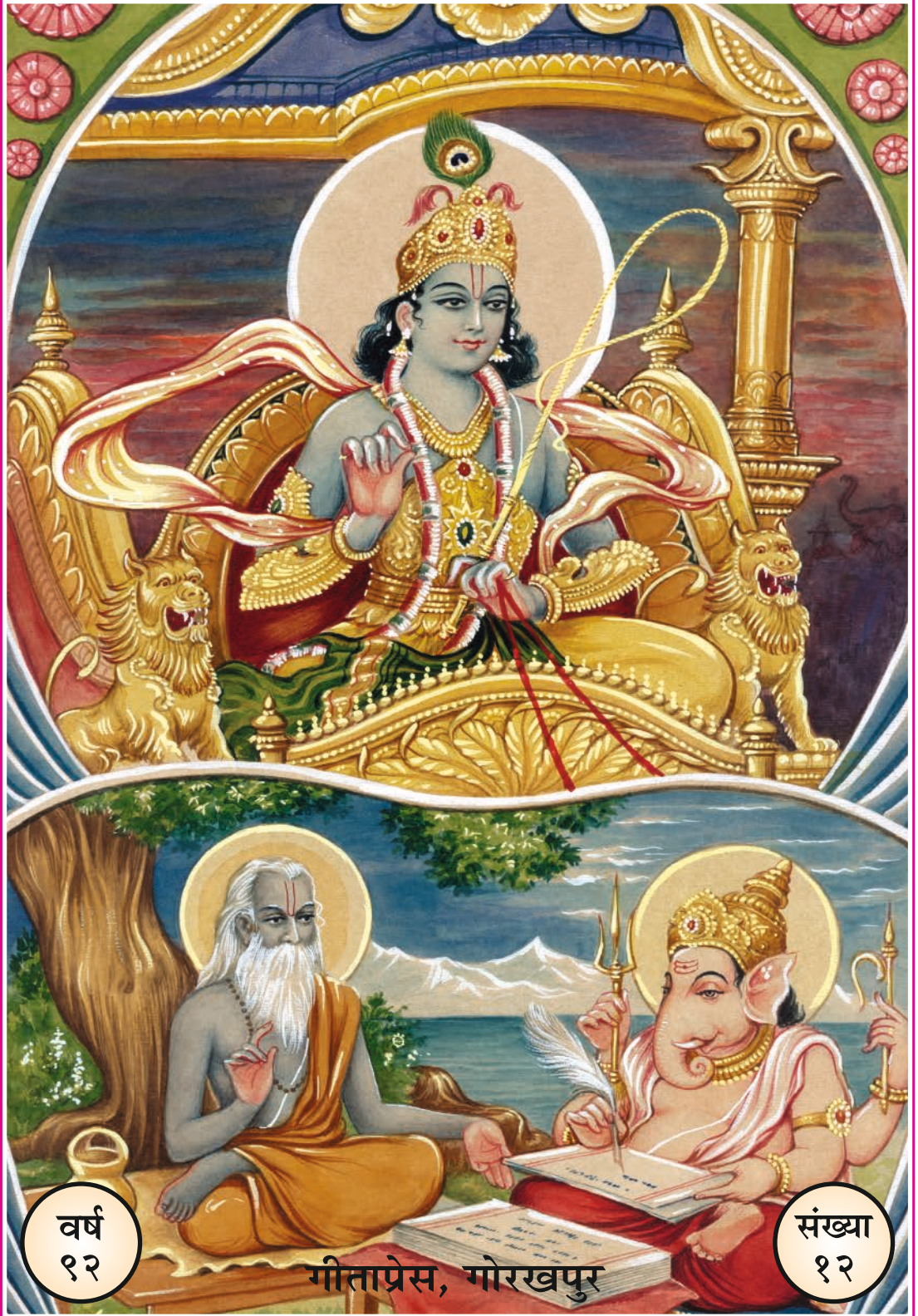


* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये



वर्ष
९२

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या
१२

महाभारत-लेखन



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with

By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम् ॥

वर्ष

१२

गोरखपुर, सौर पौष, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, दिसम्बर २०१८ ई०

संख्या

१२

पूर्ण संख्या ११०५

संजय-धृतराष्ट्र-संवाद

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद् गुह्यमहं परम्। योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥
राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम्। केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥
तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः। विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः ॥
यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

[संजय राजा धृतराष्ट्रसे कहते हैं—हे राजन्!] श्रीव्यासजीकी कृपासे दिव्य दृष्टि पाकर मैंने इस परम गोपनीय योगको अर्जुनके प्रति कहते हुए स्वयं योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णसे प्रत्यक्ष सुना है। हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनके इस रहस्ययुक्त, कल्याणकारक और अद्भुत संवादको पुनः-पुनः स्मरण करके मैं बारम्बार हर्षित हो रहा हूँ। हे राजन्! श्रीहरिके उस अत्यन्त विलक्षण रूपको भी पुनः-पुनः स्मरण करके मेरे चित्तमें महान् आश्चर्य होता है और मैं बारम्बार हर्षित हो रहा हूँ। हे राजन्! जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्णभगवान् हैं और जहाँ गाण्डीव-धनुषधारी अर्जुन हैं, वहींपर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है—ऐसा मेरा मत है। [महाभारत-भीष्मपर्व]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर पौष, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, दिसम्बर २०१८ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- संजय-धृतराष्ट्र-संवाद	३	१५- तीर्थराज प्रयाग (डॉ० श्रीशिवशेखरजी मिश्र, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी०लिट०)	३०
२- कल्याण	५	१६- श्रीप्रयागाष्टकम्	३१
३- महाभारत-लेखन [आवरणचित्र-परिचय]	६	१७- काशीके सिद्धयोगी हरिहरबाबा [संत-चरित] (आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम०ए०, साहित्यरत्न)	३२
४- मन-इन्द्रियोंको वशमें करके परमात्माको प्राप्त करें (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७	१८- दिव्य मन्दिर [प्रेरक-प्रसंग]	३४
५- परमात्मप्राप्तिका साधनरूप रथ-रथी-रूपक	८	१९- संत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी संत पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे) ..	३५
६- गीताका प्रथम अध्याय (श्रीब्रह्मचारी महानामव्रतदास, एम०ए०, पी-एच०डी०)	९	२०- गुरु अलौकिक तत्त्व अथवा शरीर? (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	३६
७- भगवान् श्रीशिव और भगवान् श्रीराम (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ..	१३	२१- गोमाता भारतकी आत्मा हैं (गोलोकवासी जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्री जी' महाराज)	३७
८- सूर्यस्नानका आनन्द (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	१४	२२- साधनोपयोगी पत्र	३८
९- नित्य-प्राप्त परमात्म-तत्त्व [साधकोंके प्रति—] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१७	२३- ब्रतोत्सव-पर्व [माघमासके व्रतपर्व]	४०
१०- अर्जुनका रथ (श्रीराजेन्द्र बिहारीलालजी)	१८	२४- ब्रतोत्सव-पर्व [फाल्गुनमासके व्रतपर्व]	४१
११- कब खुलेंगे तेरे अन्तर्चक्षु? (डॉ० श्रीशैलजाजी अरोड़ा) ...	२२	२५- कृपानुभूति	४२
१२- स्वामी विवेकानन्दने कहा था (डॉ० श्रीशोभनाथलाल 'सौमित्र')	२४	२६- पढ़ो, समझो और करो	४३
१३- कलियुगके अन्तमें— [कहानी] (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')	२६	२७- मनन करने योग्य	४६
१४- संत-संस्मरण (परमपूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार)	२९	२८- निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची	४७

चित्र-सूची

१- महाभारत-लेखन	(रंगीन) .. आवरण-पृष्ठ	५- संखनाद करते अर्जुन और श्रीकृष्ण (इकरंगा)	९
२- संजय-धृतराष्ट्र-संवाद	(") मुख-पृष्ठ	६- शोकग्रस्त अर्जुनको उपदेश देते श्रीकृष्ण .. (")	११
३- महाभारत-लेखन	(इकरंगा)	७- कौरवोंको समझाते श्रीकृष्ण	(") १८
४- अनियन्त्रित रथ	(")	८- यदु-दत्तात्रेय-संवाद	(") ३६

एकवर्षीय शुल्क

₹ २५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनंद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशमें Air Mail }
शुल्क }

वार्षिक US\$ 50 (₹ 3000)
पंचवर्षीय US\$ 250 (₹ 15000)

{ Us Cheque Collection
{ Charges 6\$ Extra

पंचवर्षीय शुल्क

₹ १२५०

संस्थापक — ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक — राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक — डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : gitapress.org

e-mail : kalyan@gitapress.org

09235400242/244

सदस्यता-शुल्क — व्यवस्थापक — 'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस — २७३००५, गोरखपुर को भेजें।

Online सदस्यता-शुल्क — भुगतान हेतु — gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

कल्याण

कल्याण

याद रखो—जीवनमें छोटे-बड़े, नीचे-ऊँचे, अधम-उत्तम जितने भी जड-चेतन प्राणी हैं, सबमें भगवान् भरे हैं, सभी भगवान् से ओतप्रोत हैं। उनकी आकृति-प्रकृतिमें, खान-पानमें, व्यवहार-बर्तावमें चाहे जितना भेद हो, पर उन सबके अन्दर नित्य समभावसे विराजमान भगवान् तनिक भी भेद नहीं है।

याद रखो—जो मनुष्य इन सर्वस्वरूप, सर्वव्यापी, सर्वात्मा भगवान् की ओर देखता हुआ जगत् में व्यवहार करता है, उसके व्यवहारमें यथायोग्य व्यावहारिक विषमता रहनेपर भी मनमें कोई विषमता नहीं रहती। वह समतामें स्थित होकर वैसे ही विषम व्यवहार करता है, जैसे मनुष्य आत्मरूपसे सर्वत्र समान देखता हुआ भी अपने ही हाथसे दूसरे प्रकारका व्यवहार करता है और पैरसे दूसरे प्रकारका। पर उसके मनमें हाथ या पैर किसीके प्रति राग-द्वेष नहीं है। दोनोंमें ही समान आत्म-बुद्धि है। इसलिये व्यवहार कैसा भी हो, उससे जान-बूझकर न हाथका अपमान-अहित होता है, और न पैरका ही। इसी प्रकार उस मनुष्यके द्वारा किसीका अपमान या अहित नहीं होता।

याद रखो—जो मनुष्य मनमें विषमता रखता है, अनेक प्रकारसे भेद-बुद्धि रखता है, पर बाहर सबको समान बताकर सबके साथ समान बर्ताव करना चाहता है, उसका यह साम्यभाव कभी सफल नहीं होता। क्योंकि भिन्न-भिन्न स्वभावोंके विभिन्न प्रकारके प्राणियोंसे ही सभी प्रसंगोंमें समताका व्यवहार सम्भव ही नहीं है। बुद्धिमान् तथा श्रेष्ठ विचारवाले पुरुषोंके प्रति जितने आदरका व्यवहार होगा, उतना मूर्ख और नीच विचारवाले पुरुषोंके साथ नहीं होगा। कुत्ते, गाय और हाथीके साथ किसी भी क्षेत्रमें एक-सा व्यवहार सम्भव नहीं। साँप-बिच्छूके साथ वैसा व्यवहार तुम नहीं कर सकते, जैसा गाय-बकरीके साथ करते हो। परंतु व्यवहारमें विषमता रखते हुए भी आत्मरूपसे सबमें समान भाव रख सकते हो। भगवत्-रूपसे मन-ही-मन सबको पूजनीय मानते हुए उनका सत्कार कर सकते हो।

याद रखो—भीतरकी समता ही सच्ची समता है, क्योंकि उसके प्राप्त होनेपर राग-द्वेषका, अपने-परायेका

सर्वथा अभाव हो जाता है। फिर सभीमें समभावसे भगवद्बुद्धि रहती है, सभीके प्रति समान भावसे श्रद्धापूर्वक सेवाका अचरण होता है। किसीका बुरा करनेकी बात मनमें कभी आ ही नहीं सकती। कहीं किसीसे कोई हाँसी हो भी जाती है, तो भी मनमें वैसे ही उसपर क्रोध नहीं होता, जैसे दाँतोंसे जीभ कट जानेपर दाँतोंपर क्रोध नहीं होता।

याद रखो—भगवान् में स्थित रहकर अथवा सर्वात्मारूपसे विराजमान भगवान् की ओर देखता हुआ जो जगत् में व्यवहार करता है, उसका प्रत्येक कर्म भगवान् की पूजा होता है। वही यथार्थमें सर्वरूपोंमें विराजमान भगवान् का सर्वत्र पूजन कर सकता है। किसी भी देश, किसी भी काल और किसी भी पात्रमें उसके भगवान् उसकी आँखोंसे कभी ओझल नहीं होते, वह सर्वत्र उनको देख-देखकर श्रद्धावनत मस्तकसे प्रणाम करता है और उनकी विचित्र स्वरूपाकृतियाँ और भावभंगिमाओंको देख-देखकर मुग्ध होता रहता है। तुम यदि इस प्रकार सर्वत्र भगवान् को देख सको तो तुम्हारा भी विषम व्यवहार समरूप भगवान् की समरूप पूजामें परिणत हो जायगा।

याद रखो—जगत् में विषमता कभी मिट नहीं सकती। जगत् भगवान् का लीलाक्षेत्र है। लीलामें समता हो जाय तो लीला ही न रहे। जगत् में यदि प्रकृति साम्यभावको प्राप्त हो जाय तो जगत् ही न रहे। अतएव भगवान् की लीलाके लिये चित्र-विचित्र विभिन्न भावों, गुणों, आकृतियों और क्रियाओंकी आवश्यकता है, पर इन सारे भावों, गुणों, आकृतियों और क्रियाओंमें सर्वत्र समभावसे भगवान् भरपूर हैं। जो इन भरपूर भगवान् को देखकर, पहचानकर जगत् में व्यवहार करता है, उसमें जगत् की दृष्टिसे व्यावहारिक यथायोग्य विषमता रहते हुए ही उसका व्यवहार वस्तुतः समत्वपूर्ण होता है। वही सच्चा साम्यवादी है, जिसका बाह्य विषम व्यवहार आभ्यन्तरिक समतासे उत्पन्न और समतासे युक्त है। पर जो केवल बाहरसे सम व्यवहारका प्रयत्न करता है, अन्दर विषमता रखता है, वह तो समताका रहस्य ही नहीं समझता। ऐसे विषमतासे उत्पन्न और विषमतासे युक्त साम्यवादसे सदा दूर रहो। 'शिव'

महाभारत-लेखन



महाभारत आर्ष-साहित्यका सबसे महान् ग्रन्थ है, विषय और कलेवर—दोनों ही दृष्टियोंसे इसकी महत्ता सर्वमान्य है। भारतवर्षकी संस्कृति, सभ्यता अथवा आदर्शका प्राचीन चित्र देखना हो तो वह महाभारतमें देखा जा सकता है। यह एक अगाध महासागरके समान है। इसके भीतर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाले असंख्य उपदेशरत्न भरे पड़े हैं। संसारकी सर्वमान्य पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता भी इसी रत्नाकरका जाज्वल्यमान रत्न है। यदि महाभारतको हम सम्पूर्ण वेद, उपनिषद्, दर्शन, पुराण, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और मोक्षशास्त्रका एकमात्र प्रतिनिधि ग्रन्थ कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। इसीलिये इसके सम्बन्धमें कहा गया है—‘यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।’ अर्थात् जो इस ग्रन्थमें है, वही नाना रूपोंमें सर्वत्र है; जो इसमें नहीं है, वह कहीं भी नहीं है।

इस महान् ग्रन्थकी रचना भगवान् कृष्णद्वैपायन वेदव्यासने की। उन्होंने तपस्या और ब्रह्मचर्यकी शक्तिसे वेदोंका विभाजनकर इस ग्रन्थका निर्माण किया और सोचा कि इसे शिष्योंको कैसे पढ़ाऊँ? भगवान् व्यासका

यह विचार जानकर स्वयं ब्रह्माजी उनके पास आये और बोले—‘महर्षे! आपने अपनी वाणीसे सत्य और वेदार्थका कथन किया है, अतः आपके काव्यसे श्रेष्ठ काव्यका निर्माण जगत्में कोई नहीं कर सकेगा। आप अपना ग्रन्थ लिखनेके लिये गणेशजीका स्मरण कीजिये।’ यह कहकर ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये और व्यासजीने गणेशजीका स्मरण किया। स्मरण करते ही भक्तवाञ्छाकल्पतरु गणेशजी प्रकट हुए। व्यासजीने उनका पूजनकर प्रार्थना की, ‘भगवन्! मैंने मन-ही-मन महाभारतकी रचना की है; मैं बोलता हूँ, आप उसे लिखते जाइये।’

गणेशजीने कहा, 'यदि मेरी लेखनी एक क्षणके लिये भी न रुके तो मैं लिखनेका काम कर सकता हूँ।' व्यासजीने कहा, 'ठीक है, किंतु आप बिना सोचे न लिखियेगा।' गणेशजीने 'तथास्तु' कहकर लिखना स्वीकार कर लिया। भगवान् व्यास कौतूहलवश कुछ ऐसे श्लोक बना देते थे कि सर्वज्ञ गणेशजीको भी एक क्षणतक उनका अर्थ विचार करना पड़ता, उतनेमें ही महर्षि व्यास दूसरे बहुत-से श्लोकोंकी रचना कर डालते—

सर्वज्ञोऽपि गणेशो यत् क्षणमास्ते विचारयन् ।

तावच्चकार व्यासोऽपि श्लोकानन्यान् बहूनि ॥

(महा०आदि० १।८३)

इस प्रकार इस ग्रन्थका लेखन हुआ। इस ग्रन्थमें कुरुवंशका विस्तार, गान्धारीकी धर्मशीलता, विदुरकी प्रज्ञा, कुन्तीके धैर्य, दुर्योधनादिकी दुष्टता और पाण्डवोंकी सत्यताका वर्णन हुआ है। इसके माध्यमसे व्यासजीने मनुष्योंको धर्मपूर्ण आचरण करते हुए भगवदाश्रित जीवन जीनेका सन्देश दिया है। इसकी प्रत्येक कथासे भगवान् श्रीकृष्णकी अनिर्वचनीय महिमा प्रकट

। [सहस्रभरत, अष्टाद्विपर्व]

मन-इन्द्रियोंको वशमें करके परमात्माको प्राप्त करें

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

कठोपनिषद्में शरीरको रथ, इन्द्रियोंको घोड़े, मनको लगाम, बुद्धिको सारथि, इन्द्रियोंके विषयोंको रथके चलनेका मार्ग और जीवात्माको रथी बतलाया गया है। परमात्मासे बिछुड़े हुए जीवात्माको इसी रथके द्वारा विषयोंके मार्गपर चलकर ही परमात्माके धाम—अपने घर पहुँचना है। रथको घोड़े ही चलाते हैं, परंतु घोड़े उच्छृंखल होकर उलटे मार्गपर भी चल सकते हैं और सीधे परमात्माके मार्गपर चल सकते हैं। जिस रथका सारथि विवेकयुक्त, अप्रमत्त, स्वामीका आज्ञाकारी, लक्ष्यपर स्थिर, बलवान्, रास्तेका जानकार और घोड़ोंको लगामके सहारेसे अपने वशमें रखकर—इच्छानुसार सन्मार्गपर चला सकता है, वह रथ अपने लक्ष्यपर पहुँच जाता है। इसी प्रकार जिस पुरुषकी बुद्धि विवेकसम्पन्न, जीवात्माको परमात्माके धाममें ले जानेके लिये तत्पर, परमात्मामें लगी हुई, मन-इन्द्रियोंको अपने वशमें रखनेवाली, सदा सावधानीके साथ सबको साधन-मार्गपर ले चलनेवाली होती है, वह पुरुष इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंमें विचरता हुआ भी—जैसे सत्-सारथिके द्वारा संचालित रथ मार्गपर चलकर लक्ष्यकी ओर बढ़ता रहता है, वैसे ही परमात्माकी ओर बढ़ता रहता है। इन्द्रियाँ तथा मन यदि साधकके अपने वशमें हों और साधक उन्हें भगवत्सम्बन्धी विषयोंमें ही लगाये रखे तो इस प्रकार उन इन्द्रियोंका विषयोंमें विचरण करना हानिकारक नहीं है, प्रत्युत लाभदायक है; क्योंकि ऐसा करके वह परमात्माके समीप पहुँच जाता है। जबतक शरीर, इन्द्रियाँ और मन हैं, तबतक उनको विषयोंसे सर्वथा अलग कर देना सम्भव नहीं है, अतएव साधक उनमेंसे राग-द्वेषको हटाकर विशुद्ध बना ले और फिर उनका यथायोग्य साधनरूप विषयसेवनमें उपयोग करे। भगवान्ने कहा है—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।

आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।

प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥

(गीता २।६४-६५)

‘परंतु अपने अधीन किये हुए अन्तःकरणवाला साधक अपने वशमें की हुई राग-द्वेषसे रहित इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंमें विचरण करता हुआ अन्तःकरणकी प्रसन्नताको प्राप्त होता है। अन्तःकरणकी प्रसन्नता होनेपर इसके सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्तवाले कर्मयोगीकी बुद्धि शीघ्र ही सब ओरसे हटकर परमात्मामें ही भलीभाँति स्थिर हो जाती है।’

यह है वशमें किये हुए मनसे राग-द्वेषरहित इन्द्रियोंके सद्विषयोंमें विचरण करनेका परिणाम! जिन मन-इन्द्रियोंके द्वारा इन्द्रिय-सुखकी आशासे विषयोंका उपभोग करके दुःखोंको निमन्त्रण दिया जाता है, उन्हीं मन-इन्द्रियोंसे उन्हें साधनमें लगाकर परमात्माकी प्राप्ति की जा सकती है; परंतु जिसकी बुद्धि असावधान है, निर्बल है, इन्द्रियोंके तथा मनके अधीन है, प्रमत्त है, लक्ष्यशून्य है और परमात्माको भूली हुई है; उसको यही



शरीर-रथ विपरीत मार्गमें अग्रसर होकर वैसे ही सर्वथा

गीताका प्रथम अध्याय

(श्रीब्रह्मचारी महानामव्रतदास, एम०ए०, पी-एच०डी०)

अमेरिकाके न्यूयार्क शहरका एक विस्तृत कॉलेज—
प्रोफेसरों और छात्रोंका विस्तृत जमघट—उसमें मैं
हिन्दूधर्मपर भाषण दे रहा था। हिन्दूधर्मकी आलोचना
करते समय बातचीतके सिलसिलेमें एक अध्यापकने
जिज्ञासा की और कहा—‘आपके देशमें ईश्वरके सम्बन्धमें
जो धारणा प्रचलित है, वह बड़ी ही प्राणहीन है।’

(The conception of God in your country is very cold.)

‘आपके कहनेका मतलब?’—मैंने प्रश्न किया।

‘हाँ, आपका भगवान् निराकार, निर्विकार, निर्विशेष, शब्दहीन, अस्पर्श, अव्यय और अरूप है—संक्षेपमें ‘नहीं है’—ऐसा कहनेसे ही चल सकता है। इस तरहके प्राणहीन भगवान्को लेकर क्या जीवनमें किसी भी प्रकारका धर्मकार्य किया जा सकता है?’

‘आपने क्या हमारे किसी धर्मग्रन्थका स्वाध्याय किया है?’ मैंने प्रश्न किया।

‘हाँ, स्वामी विवेकानन्दकी वक्तृताएँ पढ़ी हैं।’

‘किसी मौलिक ग्रन्थको भी पढ़ा है क्या?’

‘भगवद्गीता भी पढ़ी है, पर अवश्य ही वह एनीबेसेंटका अँगरेजी अनुवाद था।’

‘गीता पढ़कर भी आपकी धारणा हिन्दुओंके ईश्वरके सम्बन्धमें यही रही?’

‘निश्चय ही, उससे तो वह धारणा और भी बढ़ गयी।’

‘मालूम होता है, आपने गीताको अच्छी तरह पढ़ा ही नहीं। अच्छा, आपने गीताका प्रथम अध्याय पढ़ा है?’

‘हाँ, पढ़ा है। पर प्रथम अध्यायमें पढ़नेके लायक तो कुछ है ही नहीं।’

‘बहुत कुछ है। आपने यदि प्रथम अध्यायको मनोयोगपूर्वक पढ़ा होता तो आपकी यह धारणा ही नहीं होती।’

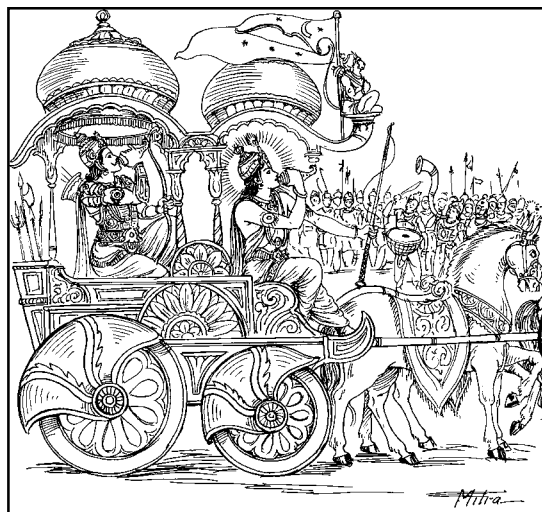
‘आप कहते क्या हैं? प्रथम अध्यायमें ऐसा क्या रखा है? यह तो भूमिकामात्र है। उसमें तो दार्शनिकताकी

गन्ध भी नहीं है। गीता पढ़ते समय उसको न पढ़नेसे भी चल सकता है।'

‘आपने भूल समझा है। प्रथम अध्यायको बाद दे देनेपर तो गीता होती नहीं। प्रथम अध्यायमें भी दार्शनिक सिद्धान्त हैं। दर्शनकी भाषामें वहाँ वे नहीं हैं। पर काव्यकी भाषामें तो हैं।’

‘मुझे तो कुछ भी समझमें नहीं आता, आप समझा दीजिये।’

मैंने भाषण देना आरम्भ किया। एक विस्तृत युद्धक्षेत्र है, उसमें अठारह अक्षौहिणी सेना युद्धके लिये एकत्र हुई है। सब बड़े-बड़े योद्धा उसमें उपस्थित हैं। उनके नाम 'अत्र शूरा महेष्वासा' इत्यादि श्लोकोद्गारा कवि हमें दुर्योधनके मुखसे सुना रहा है। युद्ध तुरंत ही आरम्भ होनेवाला है। रणभेरी बज उठी है। सब बड़े-



बड़े वीर अपने-अपने शंखोंद्वारा एक-दूसरेको आह्वान कर रहे हैं। अर्थात् ये शंख बजाकर इस बातकी घोषणा कर रहे हैं कि हम तैयार हैं, अब युद्ध आरम्भ किया जा सकता है। युद्धके नगारे बज उठे हैं। ‘स शब्दस्तमलोऽभवत्।’

ऐसे समयमें एक पक्षके सेनापति कपिध्वज अर्जुन अपने रथके सारथि भगवान् हृषीकेशसे कहते हैं—देखो, अच्युत! रथको थोड़ा आगे बढ़ाकर दोनों सेनाओंके

बीचमें ले चलो। एक बार मैं देख तो लूँ कि कौन-कौन वीर मुझसे लड़ने आये हैं। मैं उनके चेहरोंको एक बार अच्छी तरह देख लेना चाहता हूँ।’

सेनापतिकी बातें बड़ी ही वीरताभरी हैं, ओजपूर्ण हैं। बातोंमें, शब्दोंमें दम्भ भी है, अहंकार भी है, घमंड भी है—अपने शौर्यपर पूर्ण विश्वास भी उनसे प्रकट हो रहा है। मालूम होता है, वे अपने बलके सामने किसीकी परवा भी नहीं करते। वे कहते हैं—‘देखूँ, दुर्बुद्धिके मारे धृतराष्ट्रके कौन-कौनसे पुत्र मुझसे लड़ने आये हैं। यह भी देखूँ कि कौन कितने सिर अपने धड़पर लेकर मेरे सामने खड़ा है। मैं एक बार जी भरकर आँखोंसे देख तो लूँ। एक बार रथ आगे तो बढ़ाओ।’

सारथि हृषीकेशने वीर रथी अर्जुनके आदेशानुसार रथको आगे बढ़ाया और बीचों-बीच ले जाकर बोले— ‘देखो, पार्थ! उपस्थित कौरवोंको अच्छी तरह देख लो।’ सारथिके शब्दोंमें बड़ा ही गूढ़ रहस्य भरा पड़ा है। रथीको उन्होंने सम्बोधित किया है ‘पार्थ’ नामसे— अर्थात् उसकी माता पृथाका परिचय कराते हुए, जिससे कि हृदयकी कोमल स्वरतन्त्रियाँ झनझना उठें, और शत्रुपक्षका परिचय कराया है, पूर्वपुरुष कुरुका परिचय देते हुए, जिससे कि रथीके मनमें एकाएक ही कौटुम्बिक भावधारणाका स्रोत फूट पड़े। सैन्यपर्यवेक्षणकी प्रतिक्रिया क्या होगी, इस बातका संकेत भगवान् हृषीकेशकी दो-चार बातोंसे ही अपने-आप लग जाता है।

अर्जुनने सेनाको देखा। उसने देखा कि सारे चेहरे परिचित थे। केवल परिचित ही नहीं थे, उनमें सब परम आत्मीय कुटुम्बी ही थे—पितामह, पितृव्य, चाचा, नाना, गुरुदेव, मामा, भाई, पुत्र, पौत्र, श्वशुर, साले आदि सभी सम्बन्धी युद्ध करनेके लिये उपस्थित हैं। अर्जुन देख रहे हैं—पर अब और उनसे देखा ही नहीं जा रहा है। उनका शरीर काँपने लगा, वे थरथराने लगे। उनका मुँह सूख गया, सारा शरीर रोमांचित हो उठा, तमाम बदनमें आग-सी जलने लगी—गाण्डीव हाथसे गिरता-सा दिखायी पड़ने लगा। मस्तिष्कके साथ-साथ मन भी व्याकुल जो उठा। एक चार-रसका साक्षी अवतार—किस प्रकारका

करुणामूर्तिमें परिवर्तित हो गया। काव्य भी क्या ही चमत्कारपूर्ण है। भगवान् व्यासदेवने सात-आठ श्लोकोंमें ही एक सुदृढ़ लौह-पुरुषको कोमल नवनीतकी पुतली बना डाला है। दूसरे किसीको शायद ऐसा करनेमें सात-आठ पन्ने रँगने पड़ते।

‘श्रीकृष्ण! मैं युद्ध न कर सकूँगा। मुझे नहीं चाहिये जय, नहीं चाहिये राज्य। मुझे सुखकी भी इच्छा नहीं—मैं भोग भी नहीं चाहता। मेरी इच्छा तो अब जीवित रहनेकी भी नहीं है। जिनको साथ लेकर मुझे जीवनका सुख भोगना चाहिये, उन्हींसे लड़कर सुख प्राप्त करनेका—हीनकर्म मुझसे न होगा, मैं यह न कर सकूँगा, मैं यह नहीं करूँगा।’ ये ही बातें थीं, उस वीरपुंगवके मुखमें उस समय। दशा यहाँतक बिगड़ी कि बोलते-बोलते उसकी बोलनेकी शक्ति भी जाती रही। धनुर्बाण हाथसे गिर पड़ा। रथी एक बार ही मुमूर्षु—सा होकर रथपर गिर पड़ा।

अर्जुन 'शोकसंविग्नमानसः'। शोकने उसके मनको सर्वथा घेर लिया। उसे क्या करना चाहिये, इसका पता नहीं। किंकर्तव्यविमूढ़-अवस्था। सच्चे शब्दोंमें अर्जुन एक भयानक विपत्तिमें पड़ गया। संग्राम-क्षेत्रमें रथीके मनकी इस प्रकारकी अवस्थासे बढ़कर विपत्ति दूसरी नहीं हो सकती। युद्धमें हाथ-पाँव टूट जानेसे कुछ नहीं बिगड़ता। मन टूट जाना ही बड़ी विपद् है। प्राण चले जायँ तो भी ठीक है—पर यदि लक्ष्य ही भ्रष्ट हो जाय तो महान् विपत्तिका सामना हो जाता है। अर्जुनका लक्ष्य खो गया। इसीसे अर्जुनके सामने विपत्तिका हिमालय ढह पड़ा।

अर्जुनके रथके सारथि स्वयं भगवान् हृषीकेश—
समस्त इन्द्रियोंके ईश्वर हैं। वे केवल अर्जुनके युद्धके ही
सारथि नहीं, अपितु उसके सारे जीवनके सारथि हैं।
अकेले अर्जुनके ही नहीं, मानवमात्रके जीवन-युद्धके वे
सारथि हैं। अर्जुनने उनको ‘अच्युत’ नामसे सम्बोधित
किया है। कारण, वे अपने रथ और रथी—किसीसे भी
कभी विच्युत नहीं होते। अपने रथ और रथीको संकटमें
छाड़कर वे कभी भी पलायन नहीं करते। वे सारथि जीवन-

‘सोचिये, समझिये, और भी, क्या-क्या न पायेंगे।
धन्यवाद।’

भगवान् श्रीशिव और भगवान् श्रीराम

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भगवान् शिव और भगवान् श्रीराम तत्त्वतः अभिन्न हैं—इस भावकी एक बड़ी ही सुन्दर कथा पद्मपुराणके पातालखण्डमें प्राप्त होती है। परात्पर, परब्रह्म लीलामय भगवान् श्रीरामने लंका-विजयके अनन्तर अयोध्या लौटकर राज्याभिषेक हो जानेपर मुनि अगस्त्यके आदेशसे मानवलीलाकी मर्यादा-रक्षाके लिये रावणादिवधजनित ब्रह्महत्यादोषकी निवृत्तिके उद्देश्यसे अश्वमेधयज्ञका समारम्भ किया। यज्ञका घोड़ा देश-देशान्तरोंमें घूमता हुआ देवपुर नामक नगरमें पहुँचा। वहाँके राजा वीरमणिने घोड़ेको पकड़ लिया और दोनों सेनाओंमें युद्ध छिड़ गया।

राजा वीरमणि शिवके अनन्य भक्त थे और परम दयालु शंकर अपने भक्तकी रक्षाके लिये सदा उनके नगरमें निवास करते थे। जब उन्होंने देखा कि वीरमणिकी सेना राघवी सेनाके सेनापति शत्रुघ्नके द्वारा पराजित हो रही है और सैनिकोंका क्रमशः ह्रास हो रहा है, तब उन्होंने स्वयं रणांगणमें उपस्थित होकर शत्रुघ्नकी सेनाके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। जब संहारमूर्ति भगवान् रुद्र क्रुद्ध होकर समरमें आ डटें, तब भला किसकी मजाल जो उनके अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारको सह सके। बात-की-बातमें राघवी सेना छिन्न-भिन्न हो गयी और सैनिकोंमें हाहाकार मच गया। जब शत्रुघ्नने देखा कि भगवान् शंकरके बाणोंसे किसी प्रकार भी रक्षा नहीं है, तब उन्होंने कातर होकर श्रीकोसलाधीशका स्मरण किया और भगवान् उसी क्षण भक्तकी पुकार सुनकर यज्ञदीक्षाके वेशमें ही युद्ध-भूमिमें उपस्थित हो गये। भगवान्के भक्तभयहारी, सस्मित वदनारविन्दका दर्शनकर राघवी सेनामें प्राण आ गये और सैनिकोंने जयघोषपूर्वक भगवान्का अभिनन्दन किया।

शंकरजीने अपने इष्टदेवको जब सामने आते देखा, तब तुरंत युद्ध बन्द करके सम्मुख आये और प्रेमविह्वल होकर चरणोंमें गिर पड़े। भगवान्ने उन्हें उठाकर छातीसे

लगा लिया। भक्त और भगवान्के इस अपूर्व प्रेम-मिलनको देखकर सारी सेना मुग्ध हो गयी और लगी जय-जयकार करने। शंकरजी कुछ स्वस्थ होनेपर बोले— ‘प्रभो! आप प्रकृतिसे पर, साक्षात् परमेश्वर हैं, आप ही अपनी अंश-कलासे अखिल विश्वका सृजन, पालन और संहार करते हैं और स्वयं अरूप होते हुए भी मायासंवलित होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—इन तीन रूपोंको धारण करते हैं। आपके लिये ब्रह्महत्यादोषके परिमार्जनके लिये अश्वमेधयज्ञका उपक्रम करना विडम्बना है। जिनके चरणोंसे निकल हुई श्रीगंगाजी लोकमें पतितपावनी नामसे प्रसिद्ध हैं, और मेरे सिरका आभूषण हो रही हैं, जिनके नामके उच्चारणमात्रसे अजामिल-जैसे अनेकों महापातकी तर गये, उन्हें कभी ब्रह्महत्याका पाप लग सकता है? आपकी सारी क्रियाएँ संसारमें मर्यादा-स्थापनके लिये ही हैं, इसीलिये तो आपको ‘मर्यादापुरुषोत्तम’ कहते हैं, नाथ! आपके कार्यमें विघ्न डालकर मैंने वास्तवमें महान् अपराध किया है, उसके लिये क्षमा चाहता हूँ। बात यह है, कि मुझे सत्यके पाशमें बँधकर इच्छा न रहते हुए भी यह सब कुछ करना पड़ा। इसीलिये आपके प्रभावको जानते हुए भी आपकी सेनाके विरुद्ध खड़े होनेका अनुचित कार्य मैंने किया। इस राजाने प्राचीन कालमें उज्जयिनीमें महाकालके स्थानपर बड़ी उग्र तपस्या की थी, जिससे प्रसन्न होकर मैंने इसे एक वरदान दिया था। वह यह था कि जबतक अश्वमेधके प्रसंगमें मेरे इष्टदेव यहाँ न पधारें, तबतक मैं तुम्हारे नगरकी रक्षा करूँगा। बस, आज मेरा व्रत समाप्त हुआ। मैं वास्तवमें अपनी कृतिपर लज्जित हूँ। अब आप कृपया मेरे इस भक्तको अपना दासानुदास समझकर अपनाइये और घोड़ेसहित इसके राज्य एवं सर्वस्वको अपनी सेवामें अंगीकार कीजिये।’ यह कहकर भगवान् त्रिलोचनने राजा वीरमणिको पुत्र-पौत्रोंके सहित भगवान्के सम्मुख ला उपस्थित

अतः यह निश्चित जानना चाहिये कि एक ही परम तत्त्वके ये सब लीलाभेदसे विभिन्न नामरूप हैं। इनमें स्वरूपतः भेद-कल्पना भी नहीं करनी चाहिये।

जामनगरके राजा साहब जब यूरोपसे सोलेरियम देखकर आये तो उन्होंने भारत आकर प्रचुर धन लगाकर सूर्यगृह खोला। आज देश-विदेशमें अनेक सूर्यगृह खुले

सूर्यस्नानसे दिन-दिन आपका स्वास्थ्य सुधरने
लगेगा। तन, मन प्रसन्न होगा। लूटिये यह आनन्द!
निःशल्क! निर्बाध!! एकदम मुफ्त!!!

साधकोंके प्रति—

नित्य-प्राप्त परमात्म-तत्त्व

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

जो नित्य-प्राप्त परमात्म-तत्त्व है, उसीको प्राप्त करना है। उस तत्त्वको प्राप्त करनेके लिये किसी परिश्रम अथवा समयकी आवश्यकता नहीं है। सभी विषम, परिवर्तनशील एवं प्रतिक्षण नष्ट होते हुए भूतप्राणियोंमें वे परमात्मा सम, अपरिवर्तनशील एवं अविनाशीरूपसे स्थित हैं (गीता १३। २७)। उनकी प्राप्तिका अनुभव करनेके लिये कोई भी व्यक्ति अयोग्य, निर्बल अथवा पराधीन नहीं है। केवल परिवर्तनशील एवं नाशवान् संसारकी ओरसे दृष्टि हटाकर इस तत्त्वकी ओर दृष्टि करनेकी ही आवश्यकता है।

संसारके सम्बन्धसे मनुष्यके मनमें हलचल उत्पन्न हो जाती है। बाहरकी अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितिके अनुसार उसके अन्तःकरणमें सुख-दुःख, शान्ति-अशान्ति आदिका संचार होता रहता है। वह बाहरकी बदलती हुई परिस्थितियोंको तथा अन्तःकरणमें होनेवाली हलचलको जाननेवाला है। सुख तथा दुःख—इन दोनोंको जाननेवाला वह एक ही है। ऐसा नहीं होता कि सुखको जाननेवाला कोई और है तथा दुःखको जाननेवाला कोई और। सुख तथा दुःख बदलनेवाले एवं विषम हैं; किंतु इनको जाननेवाला स्वयं दोनों ही परिस्थितियोंमें वही रहता है, बदलता नहीं। अतः यह सिद्ध हुआ कि परिवर्तन बाहरकी परिस्थितियोंमें एवं हृदयकी हलचलमें ही होता है, स्वयंमें कोई परिवर्तन नहीं होता। स्वयंमें कोई परिवर्तन होता तो वह इन बदलती हुई परिस्थितियोंको जान नहीं सकता। कारण कि परिवर्तनशील अपरिवर्तनशीलके द्वारा ही जाना जा सकता है। दोनों ही परिवर्तनशील हों तो एक-दूसरेको जान नहीं सकते। इसलिये साधकको इन परिवर्तनशील सुख-दुःख, अनुकूलता-प्रतिकूलता आदिपर दृष्टि न रखकर इन्हें महत्त्व न देकर अपरिवर्तनशील एवं सम—परमात्मापर ही अपनी दृष्टि रखनी चाहिये।

इससे सहज ही नित्य-प्राप्त परमात्म-तत्त्वका अनुभव हो जायगा।

जबतक आदर-सत्कार, मान-बड़ाई एवं अनुकूलताकी प्राप्तिसे सुख तथा निन्दा, अपमान, प्रतिकूलता आदिकी प्राप्तिसे दुःख होता है, तबतक परमात्माका अनुभव नहीं हो सकता। इसमें एक विलक्षण बात यह है कि यदि साधक अपने स्वरूपमें स्थित न रह सके और उसपर सुख-दुःखका प्रभाव पड़ जाय, तो भी उसे चिन्ता नहीं करनी चाहिये; अपितु इन सुख-दुःख, मान-अपमान आदिको एवं इनसे पड़नेवाले प्रभावको महत्त्व नहीं देना चाहिये; क्योंकि ये आने-जानेवाले, अनित्य हैं—

‘आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत’ (गीता २।१४)। इन्हें महत्त्व देते रहेंगे तो इनका प्रभाव मिटेगा नहीं। जो निरन्तर रहनेवाली अपनी सत्ता है, उसीको महत्त्व देना चाहिये कि ‘मैं तो निरन्तर रहता हूँ। आदर हुआ तो भी मैं वही रहा; निरादर हुआ तो भी मैं वही रहा; निन्दा हुई तो भी मैं वही रहा; प्रशंसा हुई तो भी मैं वही रहा; अनुकूल-से-अनुकूल परिस्थिति आयी तो भी मैं वही रहा; एवं प्रतिकूल-से-प्रतिकूल परिस्थिति आयी तो भी मैं वही रहा।’ इस प्रकार स्वयंकी वास्तविकताको जान लेनेसे सुख-दुःख, मान-अपमान आदिसे पड़नेवाला प्रभाव स्वतः ही मिट जायगा। यह अनुभवकी बात है कि यह प्रभाव सदा ठहरता नहीं। अतः जो ठहरता नहीं, उसको क्या महत्त्व दिया जाय! असत्को महत्त्व देनेसे सत्की प्राप्ति कैसे होगी? सत्की प्राप्ति तो असत्के त्यागसे ही होगी।

जिस समय साधक इन द्वन्द्वोंसे प्रभावित न होनेकी योग्यता प्राप्त कर लेगा, उसी समय मोक्ष-प्राप्तिके योग्य हो जायगा—

‘समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।’

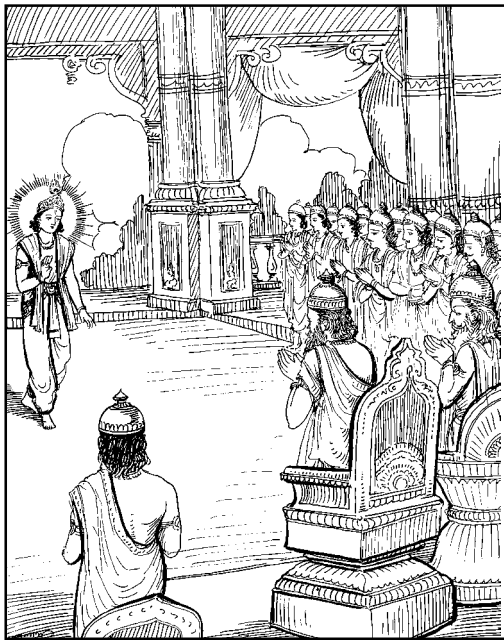
(गीता २।१५)

अर्जुनका रथ

(श्रीराजेन्द्र बिहारीलालजी)

कौरव और पाण्डव चचेरे भाई थे। कौरव दुष्ट प्रकृतिके थे और पाण्डवोंका नाश करनेके लिये तरह-तरहके उपाय करते रहे। जब वे उपाय सफल नहीं हुए तो उन्होंने पाण्डवोंको द्यूतके खेलमें धोखा देकर परास्त किया। फलस्वरूप पाण्डव अपना राज्य खो बैठे और उन्हें तेरह वर्ष निर्वासनमें व्यतीत करने पड़े। यह कथा विस्तारसे महाभारतमें है।

निर्वासन-अवधि पूरी हो जानेपर उन्हें अपना राज्य वापस मिलना था और इसके लिये उन्होंने पूरी कोशिश भी की; यहाँतक कि उनकी ओरसे स्वयं श्रीकृष्ण दूत



बनकर गये और कौरवोंको बहुत समझाया-बुझाया, पर कौरवोंमें ज्येष्ठ दुर्योधन युद्धके बिना पाण्डवोंको सूईकी नोकके बराबर भी भूमि लौटानेको सहमत न हुआ।

समझौतेका हर सम्भव प्रयास विफल हो जानेपर युद्ध अवश्यम्भावी हो गया। दोनों पक्षोंने लड़ाईकी तैयारी की। अर्जुनकी प्रार्थनापर श्रीकृष्ण युद्धमें उनके सारथी बननेको राजी हो गये, पर इस शर्तके साथ कि वे न तो युद्ध करने और न शस्त्र हो ग्रहण करने-उनकी

सेना कौरवोंके पक्षमें गयी।

जब दोनों ओरकी सेनाएँ समरभूमिमें आमने-सामने खड़ी थीं, अर्जुनने अपने रथको दोनों सेनाओंके बीचमें खड़ा करवाया। जब उसने यह देखा कि जिन लोगोंसे उसे युद्ध करना है, उनमेंसे अनेक सगे-सम्बन्धी तथा गुरुजन हैं तो उसने अपने धनुष और तरकसको एक ओर रख दिया और श्रीकृष्णसे कहा कि मैं युद्ध नहीं करूँगा। अर्जुनके तर्कका सार यह था कि राज-पाटके लिये अपने प्रियजनोंका संहार करनेसे कहीं उत्तम होगा भिक्षा माँगकर जीवन-यापन कर लेना।

वास्तवमें देखा जाय तो युद्ध-स्थलके बीच अर्जुनका रथ, जिसके सारथि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण थे, गीताके मूल सिद्धान्तोंका दृष्टान्त है। गीतामें जो बातें शब्दोंमें बतायी गयी हैं, वे अर्जुनके रथमें प्रत्यक्ष दिखायी गयी हैं। इस रथमें मनुष्य और भगवान्, नर और नारायणका योग और मिलन होता है।

सारा संसार कुरुक्षेत्र है

जिस स्थानपर अर्जुनका रथ खड़ा है, वह कुरुक्षेत्र है। कुरुक्षेत्र सारे संसार, विशेषकर मानव-जीवनका प्रतीक है। कुरुक्षेत्रके तीन पहलू हैं, जो सभी बड़े महत्त्वके हैं। ऐतिहासिक दृष्टिसे यह प्रसिद्ध रणभूमि है। कुरुक्षेत्रका शाब्दिक अर्थ है—कर्मक्षेत्र या कर्तव्य-क्षेत्र। गीतामें इसे धर्मक्षेत्र भी कहा गया है और धर्मक्षेत्र शब्दसे ही गीताका आरम्भ होता है—‘धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे।’

कुरुक्षेत्रकी भाँति यह जीवन भी एक युद्धभूमि है। प्रत्येक मनुष्यको अपनी और समाजकी कमजोरियों और बुराइयोंसे, अन्याय और अधर्मसे तथा प्रकृतिकी विनाशकारी शक्तियोंसे मोर्चा लेना पड़ता है। यह संघर्ष कष्टदायक होते हुए भी लाभप्रद है; क्योंकि इससे मनुष्यकी सुषुप्त शक्तियाँ जाग्रत होती हैं। गीता सिखानेवालेने यह नहीं कहा कि संघर्ष मुह छिनाओ, उनका आदेश तो यह

ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। वह निमिषमात्रमें जो चाहे कर सकता है। पर उसका विधान यह है कि वह संसारका बहुत-सा काम मनुष्यके द्वारा ही कराता है। हममेंसे प्रत्येकको उसने कुछ योग्यता प्रदान की है और कुछ काम सौंपे हैं। किंतु वह जबर्दस्ती कुछ भी नहीं कराना चाहता। हाँ, वह यह अपेक्षा अवश्य करता है कि हम स्वेच्छासे अपने कर्तव्यका पालन करें, अपनी शक्तियोंका जन-कल्याणके लिये सदुपयोग करें और उसकी सरकारके वफादार कर्मचारीकी तरह उसके लिये और अपने सहजीवियोंकी भलाईके लिये काम करें।

अवतार और गीताके प्रवर्तकके रूपमें भी श्रीकृष्णने अथक परिश्रमका उज्ज्वल उदाहरण ही हमारे सामने रखा। उन्होंने अगर घण्टा-दो-घण्टा अर्जुनको धर्मोपदेश दिया तो १८ दिन युद्धमें उसके सारथि-जैसा निम्न कोटिका काम भी करते रहे और हर रातको जख्मी तथा

सेवा, लोक-संग्रह, दुष्टदमन और जीवन-निर्वाहके सभी काम भगवान्की आराधना हैं और परमात्मा तथा मोक्षको प्राप्त करानेमें समर्थ हैं। किंतु यह तभी हो सकता है, जब सारे कार्योंको निष्काम अर्थात् निःस्वार्थ भावसे अपना कर्तव्य समझकर, दूसरोंकी भलाईके लिये किया जाय और उनके फलस्वरूप जो कुछ मिले उसे भी प्राणिमात्रमें रहनेवाले भगवान्की सेवामें लगा दिया जाय। ऐसा करके ही परमेश्वरसे पूर्ण, नित्य और चिरस्थायी योग स्थापित किया जा सकता है, जिसमें पूजा और सेवा दोनोंका सन्तुलित मिश्रण होना आवश्यक है। गीतामें इसी योगपर जोर दिया गया है—मुझे सदा याद करता रह और युद्ध भी कर—‘मामनुस्मर युध्य च’। और, रथमें बैठे हुए उद्योगशील अर्जुन तथा श्रीकृष्णने यही योग दर्शाया है। मनुष्यमात्रके लिये यही योग सुलभ और सर्वश्रेष्ठ है।

कब खुलेंगे तेरे अन्तर्चक्षु ?

(डॉ० श्रीशैलजाजी अरोड़ा)

सम्पूर्ण सृष्टिमें मनुष्य ही एकमात्र ऐसा प्राणी है, जिसके पास ईश्वरप्रदत्त बुद्धि है, विवेक है, जिससे वह सम्यक् सोच-विचार कर सकता है। वस्तुतः हमारी स्थूल दृष्टि जो देखती है, जैसा सोचती है, वैसा ही हमारा संसार निर्मित हो जाता है। इस संसारके बाहर न तो हम सोच-समझ सकते हैं और न ही सोचनेका प्रयास ही करते हैं। सत्य तो यह है कि उसी सीमाके अन्दर रहते हुए हम अपना पूरा जीवन कालको सोंप देते हैं। यही कारण है कि हम अपनी गलत आदतोंको ढोते रहते हैं। अपनी संकीर्ण और स्वार्थपरक सोचके बाहर जाकर परमार्थ और परोपकारका कार्य नहीं कर पाते। हमारी असंख्य समस्याओंका प्रमुख कारण भी यही संकुचित दृष्टि ही है। यदि इसके परे जाकर हम सूक्ष्म दृष्टिका विकास कर लें तो निश्चित रूपसे हमारे जीवनकी दिशा और दशा दोनों बदल जायँगी। परिणामस्वरूप हम मानव-जीवनको जो ईश्वरकी ओरसे हमें अनुपम उपहार मिला है, उसे बेहतर तरीकेसे समझने और जीनेमें सफल हो सकेंगे।

प्रायः हम किसी भी व्यक्तिके स्थूल आवरणको देखते हैं, वस्तुओंकी बाह्य चमक-दमकसे प्रभावित हो जाते हैं और उसीमें ही आसक्त भी हो जाते हैं। देखा जाय तो हमारा यह नजरिया सही नहीं होता; क्योंकि स्थूल आवरणोंसे व्यक्ति और वस्तुकी जो पहचान होती है, वह स्थायी नहीं होती। स्थायी होती है भीतरकी शक्ति, अन्तरकी चेतना, लेकिन दुर्भाग्यवश उस शक्ति और चेतनाकी ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता। हम बाहरी आकार-प्रकारसे सम्मोहित होकर उसीका ध्यान करते हैं, उससे प्यार करते हैं और सदैव उसके पास रहना चाहते हैं। यही मोह या आसक्ति हमारी प्राण-ऊर्जाको उस व्यक्ति या वस्तुके स्थूल आवरणसे अन्तरंग रूपसे जोड़ देती है और हम जीवनके वास्तविक लक्ष्यसे कहीं दूर चले जाते हैं। हमें जुड़ना तो चाहिये था परमतत्त्व परमात्मासे किंतु हम जुड़ जाते हैं प्रभुकी बहिरंगा शक्ति मायासे, जिसका परिणाम होता है आवागमनका अन्तहीन सिलसिला, जो हमें दुःखोंके सागरसे

Hinduism Discard Server <https://dsc.gg/dl>

इसी प्रकार हमारी स्थूल दृष्टि दूरदर्शितासे इतनी परे होती है कि हम गाहे-बगाहे ईर्ष्या-द्वेषके दुष्प्रक्रममें फँस जाते हैं। जब हम किसी व्यक्तिकी सफलताको देखते हैं तो हम उसे पचा नहीं पाते और अनावश्यक रूपसे उस व्यक्तिसे ईर्ष्या-द्वेष करने लगते हैं। हमारा ध्यान उस व्यक्तिविशेषकी सफलताकी ओर रहता है। हम इस बातपर विचार नहीं करते कि उस सफलताके पीछे कितना चिन्तन, परिश्रम और पुरुषार्थ किया गया है, जिससे प्रेरणा लेकर हम भी सफलताकी सीढ़ियोंपर आरूढ़ हो सकते थे। होना तो यह चाहिये था कि हम उसकी सफलतामें लगे अथक श्रमका सम्मान करते और अपने अन्दर भी वैसा ही जज्बा पैदा कर पाते। ईर्ष्या-द्वेष एक नकारात्मक विचार है, जो हमें बन्धनमें डालता है। इसी तरह धनी व्यक्तिके ऐश्वर्य एवं साधन-सामग्रीको न देखकर उसके द्वारा अर्जित शुभकर्मोंकी पूँजीको देखना चाहिये और उसे संचित करनेका यथासम्भव प्रयास करना चाहिये।

कई बार व्यक्ति किसी परिस्थितिसे स्वयंको इतना अधिक जोड़ लेता है कि अमिट स्मृतिके रूपमें वह दृश्य उसके सम्पूर्ण जीवनमें छाया रहता है और उसके वर्तमान जीवनको सतत प्रभावित करता रहता है। परिस्थितिके परिवर्तित हो जानेपर भी किसी व्यक्तिविशेष या वस्तुके प्रति मनमें राग-द्वेष, भय, क्रोध इत्यादि नकारात्मक भाव बने रहते हैं, जो हमारे अगामी जन्मोंकी गतिको प्रभावित करते हैं। कई बार हम लोभ-लालचमें फँसकर अपने सिद्धान्तोंकी बलि दे बैठते हैं और कभी-कभी मिथ्या अहंकारके वशीभूत होकर स्वजनोंका ही तिरस्कार कर देते हैं। कभी एकान्तमें बैठकर इन समस्त स्थितियोंपर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये और जितना जल्दी हो सके, इन विकारोंसे मुक्ति पानेका उपाय करना चाहिये।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने मानवमात्रको अनासक्तिका
अद्भुत पाठ पढ़ाया है ताकि वह आत्मकल्याणका
अन्तिम लक्ष्य प्राप्त कर सके। गीतामें अर्जुनके माध्यमसे
भगवान् बार-बार हमें यही सन्देश देते हैं कि मनुष्य

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

आसक्तिसे रहित होकर सदा कर्तव्यकर्म करता रहे ताकि वह परमात्माको प्राप्त हो जाय। गीताके तीसरे अध्यायमें अर्जुनसे भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।

असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥

(गीता ३।१९)

अनासक्ति एवं निरासक्तिके भावका अनुपम उदाहरण हमें राँका एवं बाँका नामक भक्तोंके जीवनसे मिलता है। राँका एवं बाँका दोनों पति-पत्नी भगवान् शिवके परम भक्त थे। वे प्रतिदिन जंगलसे लकड़ियाँ काटकर लाते और उन्हें शहरमें बेचकर जीवन-निर्वाह करते थे। उनकी दयनीय दशाको देखकर एक दिन माता पार्वतीको उनपर दया आ गयी और भगवान् आशुतोषसे प्रार्थना की कि वे उन्हें समुचित धन प्रदान करें ताकि उनका भक्त विपन्नतासे परेशान न हो। अन्तर्यामी भगवान् शिव जानते थे कि उनका भक्त तो निरासक्त है और धनको स्वीकार नहीं करेगा। फिर भी माता पार्वतीका मन रखनेके लिये उन्होंने भक्तकी आर्थिक सहायता करनेका निश्चयकर एक दिन उनके मार्गमें कुछ स्वर्णकी अशरफियाँ डाल दीं। राँका और बाँका लकड़ियाँ लेकर शहरको आ रहे थे। राँका आगे चल रहे थे और बाँका पीछे आ रही थी। रास्तेमें राँकाने सोनेकी अशरफियाँ पड़ी देखीं तो सोचा कि इन्हें देखकर बाँकाका स्त्रीसुलभ मन स्वर्णके लोभमें आकर कहीं डोल न जाय, इसलिये वे अशरफियोंपर मिट्टी डालने लगे। इतनेमें बाँका भी आ गयी और जब उसने राँकाको ऐसा करते देखा तो तपाकसे बोली—‘स्वामी ! मिट्टीपर मिट्टी डालनेसे क्या लाभ होगा ? आप व्यर्थमें ही परिश्रम कर रहे हैं। इस बातको सुनकर राँका भौचक्के रह गये और सोचने लगे कि उसकी पत्नी तो निरासक्तिमें उससे भी एक कदम आगे है। उन्होंने विचार किया कि मेरी दृष्टिमें तो अभीतक भी मिट्टी और सोनेमें भेद है, परंतु मेरी पत्नीके लिये तो सोना और मिट्टी एकसमान हैं। कितनी विलक्षण है बाँकाकी दृष्टि !

गीतामें भगवान् अर्जुनसे बार-बार कहते हैं कि तू मुझमें मन लगा, मेरा ही चिन्तन करते हुए सम्पूर्ण कर्मोंका फल मुझको ही अर्पितकर ताकि तेरा कल्याण हो जाय। गीताके बारहवें अध्यायमें कहा गया भगवान्का

यह कथन बड़ा ही मननीय है—

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।

निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥

(गीता १२।८)

अर्थात् मुझमें मनको लगा और मुझमें ही बुद्धिको लगा। इसके उपरान्त तू मुझमें ही निवास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। यदि हम अपने अन्दर अवस्थित परमेश्वरका दर्शन कर सकें तो हमारे मनमें संसारके प्रत्येक प्राणीके प्रति सम्मान और ईश्वरत्वका भाव जाग्रत् होगा, जिससे हमारे मनका विस्तार होगा और कल्याणका मार्ग प्रशस्त होगा। यदि हम बीजके स्थूल आवरणतक ही अपने आपको सीमित कर लेंगे तो उसे लघु ही समझते रहेंगे। यदि उसके अन्दर निहित सम्भावनाओंको देखनेका साहस जुटायेंगे तो हमें ज्ञात होगा कि उस बीजके अन्दर किसी बड़े वृक्षके रूपमें परिणत होनेकी अपार सम्भावनाएँ मौजूद हैं। यदि हम अपनी दूरदृष्टिका विकास करके अपने अन्तर्चक्षु खोलनेका साहस बटोर लेते हैं तो हमारा जीवनरूप सुमन महककर खिल उठेगा; क्योंकि यही एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा हमें अपने उद्गम परमपिता परमेश्वरका पावन स्पर्श, सान्निध्य और साहचर्य मिल सकेगा।

जीवमात्रके सुख और परमकल्याणके लिये चिन्तनशील एवं प्रयासरत रहना संतोंका सहज स्वभाव होता है। इसलिये मनुष्यको प्रमादमें पड़ा देखकर संतजन चिन्तित हो कह उठते हैं—‘हे मानवश्रेष्ठ! तुम इस जगत्में आत्माके कल्याणके लिये भिक्षु अर्थात् मुमुक्षु बनकर आये हो, न कि भोग-विलास और जगत्का खेल-तमाशा देखनेके लिये तुम्हारा पदार्पण हुआ है। मौत घात लगाये बैठी है, काल सिरपर सवार है। न जाने कब वह तुझे अपना निवाला बना ले। इस दुनियामें हर रोज लगभग अढ़ाई लाख मानव कालके मुँहमें समा जाते हैं। तू भी उसी कतारमें खड़ा है, यह मत भूल। अतः इससे पहले कि तुम्हारा स्थूल शरीर कालका घास बन जाय, अपने अन्तर्चक्षु खोलिये और पूरे जतनके साथ अविलम्ब जुट जाइये; क्योंकि समय थोड़ा है और लक्ष्य बहुत बड़ा।’ महापुरुषकी यह देशना उचित ही जान पड़ती है। इसलिये कहा है—

बनकर आया जग में भिक्षु । कब खुलेंगे तेरे अन्तर्चक्षु ॥

स्वामी विवेकानन्दने कहा था

(डॉ० श्रीशोभनाथलाल 'सौमित्र')

अमेरिकाके शिकागो नगरमें दिसम्बर १८९३ ई० में आयोजित अखिल विश्व सर्वधर्म-सम्मेलनमें प्रथम व्याख्यानके पश्चात् ही स्वामी विवेकानन्द-(जन्म १२ जनवरी १८६३)-की ख्याति विद्युत्-धाराकी भाँति विश्वमें फैल गयी। रेशमी वस्त्रों तथा पट्टेदार मुरेठामें स्वामीजीका कान्तिमान गौर वर्ण अपूर्व ज्योतिपुंज-सा दमक रहा था। दस हजार श्रोताओंसे खचाखच भरे हुए व्याख्यान-कक्षके मंचपर खड़े होकर सम्बोधित करनेका यह उनका पहला अवसर था। इस सम्मेलनमें भाग लेनेके लिये वे भारतसे अमेरिका आ तो गये, परंतु इतने बड़े जनसमुदायके सम्मुख खड़े होकर कुछ कहनेमें सम्भवतः उन्हें कुछ हिचकिचाहट अनुभूत हो रही थी। इसलिये वक्ताओंमें उनका क्रम आनेपर उद्घोषके द्वारा जब उन्हें मंचपर बुलाया जाता था तो वे 'थोड़ी देरके बाद' का निवेदनकर अपना क्रम आगेके लिये टलवा लेते थे। परंतु यह क्रम कबतक आगे टलता रहता? इस बार उद्घोषकने घोषणा कर दी कि अब भारतसे पधारे युवा संत स्वामी विवेकानन्द बोलेंगे। लोगोंकी दृष्टि इस भारतीय युवा संतकी ओर बरबस ही मुड़ गयी। कुछ काना-फूँसी भी हुई—यह नवयुवक भला क्या बोलेगा! क्या भारतका प्रतिनिधित्व यह युवक ही करेगा? आदि-आदि। उनका उद्दीप्त व्यक्तित्व जितना आकर्षक था, आयु उतनी ही कम। तीस वर्षीय युवक, स्वामीजी विश्वके उत्कृष्ट श्रोताओंको सम्बोधित करनेके लिये मंचपर पधारे। उस समय लोगोंके चेहरेपर उनके भारतीय अध्यात्म, धर्म एवं दर्शन-सम्बन्धी ज्ञान तथा अनुभवके बारेमें शंका एवं अविश्वासकी रेखाएँ उभर आयी थीं।

स्वामीजीने मन-ही-मन एक क्षण गुरुदेव रामकृष्ण परमहंसजी एवं माँ शारदाका स्मरण किया। ‘लेडीज एण्ड जेण्टिलमेन’ के घिसे-पिटे परम्परागत सम्बोधनकी जगह उन्होंने भाषणके आरम्भमें बड़े भावपूर्ण शब्दोंमें

कहा—‘ब्रदर्स एण्ड सिस्टर्स आफ अमेरिका’। सारा हाल तालियोंकी गड़गड़ाहटसे गूँज उठा। श्रोता अपनी कुर्सियोंसे खड़े हो-होकर उन्हें साधुवाद देने लगे। फिर तो उस विश्व-सम्मेलनमें उन्होंने जो कुछ कहा—अमेरिकाके समाचारपत्रोंने उसे ‘अभूतपूर्व’की संज्ञा देकर प्रमुखतासे छापा। स्वामीजी क्या बोल गये, उन्हें स्वयं कुछ ज्ञात नहीं हुआ। प्रभु-कृपासे सरस्वतीने उनके जिह्वाग्रपर बैठकर भारतीय अध्यात्म एवं दर्शनकी सार्वभौमिक विवेचना करा दी। उसी दिन स्वामीजी एकाएक अन्तरराष्ट्रिय व्यक्ति बन गये। कैसी विडम्बना है कि पाश्चात्य जगतने हमें स्वामीजीकी पहचान करायी।

अमेरिका-प्रवास-कालमें स्वामीजीने जहाँ-तहाँ अनेक व्याख्यान दिये, प्रवचन किये, प्रश्नोंके समाधान किये। अनेक अमेरिकी नर-नारी उनके शिष्य हो गये, उनके चरणोंमें स्वयंको समर्पित कर दिया। एक स्थलपर एक सज्जनने उनसे पूछा—‘स्वामीजी! आपके मतानुसार सभी धर्मोंका मूल उद्देश्य एक ही है, अमुक धर्म अच्छा, अमुक धर्म बुरा है, ऐसी बात नहीं, तो फिर विश्वमें धार्मिक असहिष्णुता, विद्वेष तथा साम्प्रदायिक वैमनस्यके झगड़े क्यों दिखायी पड़ते हैं? उस दिनके प्रवचनके दौरान स्वामीजीने एक कथा कही, जिससे इस प्रश्नका समाधान हो जाता है।

उन्होंने कहा—एक कुँएँ एक मेढक रहा करता था। कुँएँ अन्दर ही वह जीवन-यापन कर रहा था। अन्दरके कीड़ों-मकोड़ोंको खा-खाकर वह हृष्ट-पुष्ट हो गया था। कूप-जल ही उसका घर और कुँएँकी दीवारोंसे घिरा वायुमण्डल ही उसका संसार था। उसे क्या मालूम कि इस कुँएँसे बाहर विश्व कितना बड़ा है ? बाह्य-जगत्से वह सर्वथा अनभिज्ञ एवं अपरिचित था।

एक दिन उस कुएँमें एक समुद्री मेढक कहींसे
भटकता हुआ आ गिरा। कूप-मण्डूक इस नये अतिथिको

स्वामीजीको इस संसारसे विदा हुए (४ जुलाई १९०२ से अबतक) कोई एक सौ सोलह वर्षसे अधिक व्यतीत हो चुके हैं, परंतु उनके विचार आज भी उतने ही सत्य और सार्थक हैं। हमें धर्म-समुद्रकी विशालताको समझना और धर्म-कूपकी सीमित-सीमाका विस्तारकर वास्तविक धर्म भगवान्‌का दर्शन करना चाहिये।

कहानी—

कलियुगके अन्तमें—

(श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

[आपने यदि वैज्ञानिक कही जानेवाली कहानियोंमेंसे कोई पढ़ी हैं तो देखा होगा कि किस प्रकार दो-चार शती आगेकी परिस्थितिका उनमें अनुमान किया जाता है और वह अनुमान अधिकांश निराधार ही होता है। यह कहानी भी उसी प्रकारकी एक काल्पनिक अनुमानमात्र प्रस्तुत करती है; किंतु यह सर्वथा निराधार नहीं है। पुराणोंमें कलियुगके अन्त समयका जो वर्णन है, वह सत्य है; क्योंकि पुराण सर्वज्ञ भगवान् व्यासकी कृति हैं। उनमें भ्रम, प्रमाद सम्भव नहीं है। अतः उन पुराणोंके वर्णनोंको मुख्याधार बनाकर कल्पनाने कहानीको यह आकार दिया है। अवश्य ही आजके सामान्य स्वीकृत एवं सम्भाव्य वैज्ञानिक तथ्योंको दृष्टिमें रखा गया है।

यह कलिसंवत् ५०६४ है विक्रम संवत् २०२० में। कलियुगकी कुल आयु (पूरा भोगकाल) ४३२००० वर्ष है। इसलिये यह कहानी लगभग ४२६९०० वर्ष आगेके सम्बन्धमें है और उस समयकी स्थितिका एक दृश्य उपस्थित करती है।

इसका प्रयोजन? अनेक बार लोग इस भ्रममें पड़ते हैं कि कल्कि-अवतार हो गया या निकट वर्षोंमें होनेवाला है। यह प्रचार भी कुछ लोग करते हैं, किन्हीं भ्रान्तियोंके कारण अथवा कुछ निहित स्वार्थोंके कारण। ऐसी दशामें यह कहानी इतना तो सूचित कर ही देती है कि शास्त्र-पुराणोंके अनुसार कल्कि-अवतार जिस समय होगा, उस समयकी सामाजिक अवस्था किस स्तरपर पहुँच चुकी होगी और मुख्य घटनाएँ क्या होंगी। उनके प्रमुख पात्र कौन-से होंगे।—लेखक]

‘यह पुरुवंशी प्रतीपात्मज देवापि राजर्षि मरुको अभिवादन करता है!’ हिमालयका अत्यन्त दुर्गम दिव्यदेश कलाप ग्राम, जो नित्यसिद्ध योगियोंकी साधनभूमि है; जो मनुष्य तो दूर, गन्धर्वादि उपदेवताओंके लिये भी अगम्य एवं अदृश्य है, उसी सिद्धभूमिमें आज कुछ हलचल जान पड़ती थी। जहाँ अखण्ड शान्ति, नित्य उद्रिक्त सत्त्वगुण सदा रहता है, वहाँ किंचित् भी रजस्-क्रियाका उद्भव आश्चर्यकी ही बात है। पूरा युग लक्ष-लक्ष वर्ष व्यतीत हो गये, ऐसा तो कभी नहीं हुआ कि प्रयत्न करनेपर भी समाधिमें चित्तकी स्थिति न हो। विवशतः राजर्षि देवापि अपने आसनसे उठे। द्वापरका जब अन्त होनेवाला था, उससे कुछ ही पूर्व ये भीष्मपितामहके पिता शान्तनुके बड़े भाई यहाँ आये थे इस साधनभूमिमें। इनका साधनकाल सबसे थोड़ा रहा था। महर्षियोंके समीप जाकर उनके एकान्तमें बाधा देना ठीक नहीं लगा, अतएव अपनेसे कुछ ही शताब्दी पूर्व साधन-दीक्षित होनेवाले राजर्षि मरुके समीप वे चले आये। यह सिद्धभूमि, यहाँ शताब्दियोंका मूल्य हमारे आपके घण्टों-जितना भी कठिनाईसे ही होगा। राजर्षि मरु द्वापरके प्रारम्भमें (व्रताके व्यतीत होनेके कुछ पीछे) आये थे।

केवल कुछ वर्ष पहले—देवापिको वे अपने सहाध्यायी-जैसे लगते थे और दोनों राजर्षियोंमें अच्छी मैत्री भी हो गयी थी यहाँ आकर।

‘इक्ष्वाकुवंशीय शीघ्रका पुत्र यह मरु राजर्षि देवापिका अभिवादन करके उनका अभिनन्दन करता है।’ मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके पुत्र कुशके वंशमें अग्निवर्णके पौत्र हैं ये राजर्षि मरु। ये भी ध्यानस्थ नहीं थे। उठकर देवापिको अंकमाल दी और आसन अर्पित किया उन्होंने।

आजकी दृष्टिसे असाधारण, अकल्पनीय, दीर्घकाय, प्रलम्बबाहु, कमलदल-विशाल लोचन, उन्नत नासिका, प्रशस्त भाल एवं वक्ष और पाटल गौर वर्ण, अत्यन्त सुन्दर, सुगठित, किंचित् तपःकृश देह, जटाजूट, बड़े श्मश्रुकेश, केवल वल्कल परिधान—दोनों ही स्रष्टाकी अनुपम कृति लगते थे। राजर्षि मरुका शरीर देवापिसे विशाल था और आयुमें भी वे बड़े थे। देवापि उनका सम्मान अपने अग्रजके समान करते थे; किंतु राजर्षि मरु सदा देवापिको अपना समकक्ष मित्र ही मानते हैं।

‘आज कुछ अकल्पनीय होनेवाला लगता है।’ देवापिने कहा—‘अनेक बार प्रयत्न करके भी एकाग्र नहीं हो सका हूँ। जैसे कोई आकर्षण नीच जनकों

किंतु तुम दुखी मत हो। तुम दोनों तो उनके परम प्रिय हो। वे स्वयं तुम्हारे भवन पधारेंगे!’

‘हमारे भवन?’ मरुने चकितभावसे पूछा। भला उनकी तो कहीं झोपड़ी भी नहीं है।

‘हाँ, अब तुम गार्हस्थ्य स्वीकार करो! परशुरामजी वात्सल्य-गद्गद कह रहे थे—‘मैं तुम्हारे पुत्र-पौत्रोंको श्रुति-शास्त्र तथा शस्त्रकी भी शिक्षा दूँगा। ये जटाएँ आज विसर्जित करो और सूर्य-चन्द्र वंशोंके राज्य स्थापित करो इस पुण्यभूमिमें।’

‘वे निखिल गुरु!’ भगवान् परशुराम भाव-विह्वल हो रहे थे। वे पुनः कल्कि का वर्णन करने लगे—‘इस जनको उन्होंने गौरव दिया। उन्हें कहाँ अध्ययन करना और सीखना रहता है। श्रुति उनका निःश्वास है। मृत्यु उनके संकल्पकी छाया; किंतु यहाँ वे अत्यन्त विनम्र सेवापरायण बने रहे। उन्होंने समस्त शास्त्र, सांगवेद एवं समस्त अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षा ग्रहण करनेका नाट्य किया। गुरुका गौरव दिया इस जनको।’

 $\times \qquad \qquad \qquad \times \qquad \qquad \qquad \times$

‘वे परम प्रभु किधर……?’

‘वे उग्रतेजा-रूपमें इस बार प्रकट हुए हैं।’ परशुरामजीने प्रश्नका तात्पर्य समझ लिया—‘उन सहस्र सूर्यसमप्रभका अंगवर्ण भी नेत्रोंको आकलन नहीं हो पाता। तुम जानते हो कि इस भार्गवने भूमिको इक्कीस बार निःक्षत्र किया और नौ शोणितहृद बनाये कुरुक्षेत्रमें। किंतु आज तुच्छ है वह परशु। भगवान् देवेन्द्रके द्वारा प्रदत्त उच्चैःश्रवाकी पीठपर वायुके वेगसे रौंद रहे हैं धराको। उनके करकी कराल करवाल……तुम दर्शन करोगे उनके?’

‘देव ! दयामय !’ आर्तनाद कर उठे दोनों तपस्वी ।
भगवान् परशुरामके अनुग्रहसे प्राप्त दिव्य-दृष्टिसे जो कुछ
उन्होंने देखा, असह्य था वह उनके लिये । प्रचण्ड वायुके
वेगसे दौड़ता हरितवर्ण श्यामकर्ण अश्व और उसकी पीठपर
केश बिखरे, नेत्रोंमें प्रलयकी ज्वाला लिये, कोटि-कोटि
भास्करके समान उग्रतेजा, अरुणवर्ण खड्गहस्त वे परम
पुरुष ! पृथ्वी जैसे सम्पूर्ण रक्तके सागरमें डूब जायगी !
तिनकों-जैसे उड़ते-उछलते शव । अश्वके खुर रौंद रहे हैं
राशि-राशि प्राणियोंको । समह-के-समह मनष्य खडगसे

‘प्रजापति स्वयं तुम्हारी सहधर्मिणियोंका विधान करेंगे।’ भगवान् परशुरामने आशीर्वाद देकर बताया—
‘तुम्हारी संततिको शस्त्र एवं शास्त्रकी शिक्षा देने मुझे आना ही है!’

संत-संस्मरण

(परमपूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार)

❖ भगवान्का अर्चावतार (प्रतिमा) साक्षात् भगवान् ही है। बात मुख्यरूपसे भावकी है। वृन्दावनके पं० राजवंशीजी शालग्रामजीकी सेवा करते थे। छोटेसे गोल-मटोल शालग्रामजी एकबार हाथसे छिटक गये। पण्डितजीके मुखसे निकला—‘अरे! ठाकुरजीको चोट लग जायगी।’ तबतक जाने कैसे बिना जमीनका स्पर्श किये शालग्रामजी अपने सिंहासनमें जा विराजे। पण्डितजीकी जानमें जान आयी। यह भावकी बात है।

❖ मैहरमें रामसखा नामके एक सन्त थे, जो शालग्रामजीकी सेवा-पूजा करते थे। एक बार संयोगसे उनके ठाकुरजी कुएँमें गिर गये। अब सन्त बड़े परेशान। कोई उपाय न देखकर ठाकुरजीको डाँटने लगे—

अरे शिकारी निर्दयी करिया अवधकिशोर।

क्यों तरसावत है जिया रामसखा चितचोर॥

लोग बताते हैं कि कुएँका जल वेगपूर्वक ऊपर आया और उसमेंसे एक गुलाबके फूलपर उनके शालग्रामजी विराजमान थे, जिसे लेकर वे सन्त खुशी-खुशी अपने मार्गपर चल दिये। यह अर्चावतारमें साक्षात् भगवद्भावका चमत्कार है।

❖ सन्तोंका समत्वभाव सदैव बना रहता है, यही उनकी खास पूँजी होती है। काशीके योगनिष्ठ सन्त स्वामी विशुद्धानन्दजी महाराजके समयकी बात है। एक बार दरभंगा-नरेश उनके पास आकर सत्संगहेतु बैठे थे। स्वामीजीको भिक्षा करायी जा रही थी। सोनेके कटोरेमें खीरका प्रसाद था, जिसे स्वामीजी ग्रहण कर रहे थे। राजा बोल उठे—‘महाराज! संन्यासीका धर्म क्या है?’ विशुद्धानन्दजी तत्काल कह उठे—‘इस मूर्खको कान पकड़कर बाहर निकालो।’ लोग सन्न रह गये। राजा चुपचाप उठकर बाहर चला गया। जिज्ञासु था, दूसरे दिन फिर उपस्थित हुआ। पुनः वही प्रश्न। महाराज

बोले—‘संन्यासी वह जो सोने और मिट्टीमें फर्क न समझे, राजा और सामान्यजनमें फर्क न करे। यह समत्वभाव ही संन्यासीका मूल धर्म है।’

❖ स्वामी सम्पूर्णानन्दजीको किसीने एक कटोरा चाँदीका और एक लकड़ीका भेंट किया। स्वामीजीने चाँदीका कटोरा एक विद्यार्थीको बुलाकर उसे दे दिया। विद्यार्थी संकोचमें पड़ गया और कहने लगा कि इस बहूमूल्य कटोरेका वह क्या उपयोग करेगा? स्वामीजी बोले—‘ले लो, लकड़ी और चाँदी दोनों ही जमीनसे उत्पन्न होती है, क्या फर्क है? ठाकुरजीकी सेवामें उपयोग कर लेना। यह समत्व-बुद्धि बहूमूल्य है। शरीर प्रारब्धवश प्राप्त पदार्थोंका उपभोग करता है और संत अनासक्त साक्षीभावसे उसे देखते रहते हैं।’

❖ पूज्य भक्तमालीजी महाराजको बरसानेकी एक गरीब बाईने कहा कि उसे भागवतकी कथा करानी है, किंतु उसके पास मात्र १५०० रुपये हैं। महाराजजीने कहा कि कथाका रुपयेसे क्या सम्बन्ध है, कथा हो जायगी। निर्धारित समयपर कथा प्रारम्भ हुई, किंतु इस बीच जो रुपये उस बाईने कथाके निमित्त एक अनाजके पीपेमें रखे थे, उसे कोई निकाल ले गया। वह बड़ी चिन्तित। महाराजने उसे पुनः समझाया कि वह बिना विचलित हुए कथा-श्रवण करे। कुछलोग कहने लगे कि भक्तमालीजीने अपना स्तर कितना घटा दिया है, हमसे कहते तो हम बढ़िया इन्तजाम करा देते। महाराजजी निर्विकारभावसे कथा कहते रहे, जिसे सुननेके लिये दूर-दूरसे विद्वान् साधु-सन्त पधारते थे। यह सन्तत्वकी मुख्य परीक्षा है—जिसे जन्म-कर्म-आश्रम-वर्ण आदिका अहंकार शेष न रह जाय, जो आचाण्डालगोखुरम्को दण्डवत् प्रणाम कर सके, वही संत है।—प्रेम

तीर्थराज प्रयाग

(डॉ० श्रीशिवशेखरजी मिश्र, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी०लिट०)

हिन्दू तीर्थोंमें प्रयाग, काशी तथा गया अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तीर्थ माने जाते हैं। ये तीनों तीर्थ अपनी ख्यातिके कारण त्रिस्थलीके नामसे प्रसिद्ध हैं। नारायण भट्ट (१५८० ई०)-ने वाराणसीमें त्रिस्थलीसेतु नामक पुस्तक लिखी, जिसमें उन्होंने प्रयाग, काशी तथा गया तीनोंका विस्तृत वर्णन किया है।

प्रयागके माहात्म्यका वर्णन ऋग्वेदके खिल सूक्त (१०।७५)-में इस प्रकार प्राप्त होता है—

सितासिते सरिते यत्र सङ्गथे
तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरा-
स्तजनासो अमृतत्वं भजन्ते॥

त्रिस्थलीसेतुमें इसे आश्वलायन शाखाके अन्तर्गत आयी हुई श्रुति बतलाया गया है, किंतु 'तीर्थचिन्तामणि' के अनुसार यह ऋग्वेदका ही सूक्त है। इस सूक्तके अनुसार जो व्यक्ति सित तथा असित अर्थात् गंगा और यमुनाके संगमपर स्नान करता है, वह स्वर्ग प्राप्त करता है और जो यहाँ अपना शरीर छोड़ता है, वह मोक्षको प्राप्त करता है। मत्स्य (अध्याय १०३ से ११२), कूर्म (१।३४।२७), पद्म (१।४०।४९) तथा स्कन्दपुराण (काशीखण्ड ७।४५—६५) प्रयागको बहुत ही पवित्र स्थान मानते हैं। महाभारतके अनुशासनपर्व (२५।३६—३८)-में प्रयागमें स्नानद्वारा स्वर्गप्राप्तिका उल्लेख है—

दशतीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथा पराः॥
समागच्छन्ति माध्यां तु प्रयागे भरतर्षभ।
माघमासं प्रयागे तु नियतः संशितव्रतः॥
स्नात्वा तु भरतश्रेष्ठ निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात्।

इसी प्रकार महाभारतके अन्य स्थलोंपर भी 'प्रयाग' के माहात्म्यका वर्णन हुआ है। वाल्मीकीय रामायण (२।५४।६)-में भी प्रयागका वर्णन प्राप्त होता है।

प्रयागके लिये 'तीर्थराज' शब्दका प्रयोग अनेक स्थानोंपर हुआ है। तीर्थराजका अर्थ है 'तीर्थोंका राजा'।

पद्मपुराणमें 'स तीर्थराजो जयति प्रयागः' (६।२३।२७—३५) ऐसा उल्लेख है। मत्स्य तथा स्कन्दपुराणमें इसी

प्रकारके प्रसंग मिलते हैं। प्रयागको तीर्थराज इसलिए कहा जाता है कि एक बार ब्रह्माने यज्ञ किया, जिसमें उन्होंने प्रयागको मध्यवेदी, कुरुक्षेत्रको उत्तरवेदी तथा गयाको पूर्ववेदी बनाया।

प्रयागमें गंगा, यमुना तथा सरस्वती—तीनों धाराएँ मिलकर दो धाराओंमें परिणत हो जाती हैं। इसीसे इसका नाम त्रिवेणी तथा संगम पड़ा। मत्स्यपुराण (१०४।१२)-में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि प्रयागतीर्थके दर्शनमात्र अथवा स्मरणमात्रसे मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है—

दर्शनात्तस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि।

मृत्तिकालम्भनाद्वापि नरः पापात् प्रमुच्यते॥

कूर्मपुराण (१।३४।२७) तथा अग्निपुराण (स्तवनादस्य तीर्थस्य—१११।६-७)-में इसी प्रकारके प्रसंग प्राप्त होते हैं। कूर्मपुराण (१।३४।२०)-में इसे प्रजापतिका क्षेत्र कहा गया है—

एतत् प्रजापतिक्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।

अत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥

मत्स्य (१०४।५; १११।१४) तथा नारदीयपुराण (उत्तर० ६३।१२७-१२८) भी इसे प्रजापतिका क्षेत्र मानते हैं।

प्रयागमें विष्णु सदैव अपनी योगमूर्तिमें प्रतिष्ठित रहते हैं। (नारदीयपुराण ६५।१७) रुद्र भी यहाँ निवास करते हैं। जब उन्होंने अपने त्रिनेत्रसे संसारको भस्मीभूत किया था, उस समय प्रयाग भस्म नहीं हुआ था। इसी कारण मत्स्यपुराण (१।१११।७, ९-१०)-में प्रयागको त्रिदेवोंका निवासस्थान बतलाया गया है—

प्रयागे निवसन्त्येते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।

उत्तरेण प्रतिष्ठानाच्छद्मना ब्रह्म तिष्ठति।

वेणीमाधवरूपी तु भगवांस्तत्र तिष्ठति॥

महेश्वरो वटो भूत्वा तिष्ठते परमेश्वरः।

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।

रक्षन्ति मण्डलं नित्यं पापकर्मनिवारणात्॥

कूर्म (१।३४।२३, २६) तथा पद्मपुराण (आदि-खण्ड ४१।६-१०)-में इसीसे समानता रखनेवाले श्लोक

संत-चरित—

काशीके सिद्धयोगी हरिहरबाबा

(आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम०ए०, साहित्यरत्न)

श्रावणमासकी सरसराती गंगाकी धारामें, भादोंकी उमड़ी भयानक बाढ़में, सोलहसे लेकर बीस घंटेतक जल-समाधि लगानेवाले, वैशाख-ज्येष्ठकी तपती बालुकामें बैठे रहकर ध्यान लगानेवाले और माघकी भयानक शीतमें आकण्ठ जलमें मग्न रहकर भगवत्-चिन्तन करनेवाले श्रीहरिहरबाबा (साधुओंके ‘हरिहरभैया’) आजसे प्रायः ७५ वर्ष पूर्वतक वाराणसीका गौरव बढ़ा रहे थे।

परमपावन काशीनगरी बाबा विश्वनाथ और गंगाजीकी स्थितिके अतिरिक्त अनेक संत-महात्माओं और योगियोंका गढ़ रहा है। भगवान् बुद्धने काशीसे सम्बद्ध सारनाथमें रहकर धर्म-प्रचार किया था। जगद्गुरु शंकराचार्य-जैसे उद्भट दार्शनिक, विद्वान् एवं भाष्यकार आचार्य भी काशीपुरीकी शोभा बढ़ा चुके हैं। इसी प्रकार संत हरिहरबाबा, जिन्हें महामना ‘हरिहर भैया’ कहा करते थे, कई दशकोंतक काशीपुरीमें निवासकर अपने योग और साधनाओंसे यह सिद्ध कर दिया कि मानव मोमका पुतला नहीं, वह मनचाही सिद्धि भी प्राप्त कर सकता है और अपनी कोमल कायाको कठोरतम बना सकता है। उनकी साधनाकी बातें अलोक-साधारण हैं।

बाबा हरिहरानन्दका जन्म जाफरपुर गाँव (बिहार प्रान्तके सारन जनपद)-में हुआ था। बालक हरिहरकी शिक्षा-दीक्षा प्रारम्भ हुई और प्रारम्भमें ही वे संस्कृत पढ़ने लगे। प्रथमा-परीक्षा देनेके समय ही उनके मनमें एक विचार उठा कि हम गर्ग, गौतम, कपिल, कणादकी संतान हैं; हमारे पूर्वज दूसरोंकी परीक्षा लेते रहे और अब हम विद्या-सम्बन्धी परीक्षामें दूसरोंके सामने परीक्षार्थी बन गये! यह कितना परिवर्तन! ऐसी परीक्षासे लाभ क्या होगा? विद्या परीक्षा देनेके लिये नहीं है। विद्याका तो सतत अध्ययन और मनन होना चाहिये। इतना विचार उठते ही बालक हरिहरने तुरंत परीक्षा-भवन छोड़ दिया। उन्होंने अपनी जन्मभूमिकी ओर न चलकर सीधे वाराणसीपुरीकी यात्रा कर दी। कुछ दिन वाराणसीमें

संस्कृतका अध्ययनकर वे अयोध्या पहुँचे। अयोध्या वैरागी वैष्णवोंकी पुरी मानी जाती है। हरिहरके मनमें विरक्तिकी भावना पटनाके संस्कृत परीक्षा-भवनमें ही जाग्रत् हो गयी थी। हरिहर अयोध्यामें एक संतके पास रहकर अध्ययन करने लगे। अध्ययन करते समय ही किसी वैरागीसे उनका धार्मिक वाद-विवाद हो गया। वैरागीको बालक हरिहरके तर्कोंसे चिढ़ हो गयी और बालक हरिहर भी वहाँके वातावरणसे ऊब गये। फिर वे वाराणसी वापस आ गये। बालक हरिहरका मन ईश्वराराधनमें रम गया। वे भगवत्-चिन्तनमें लग गये; किंतु किसीसे गुरु-मन्त्र नहीं लिया!

एक दिन बालक हरिहरकी भेंट वाराणसीके तत्कालीन प्रख्यात संत श्रीवीतरागानन्दजीसे हो गयी। वीतरागानन्दजीके साथ हरिहर रहने लगे। तभीसे उन्हें लोग हरिहरानन्द कहने लगे। उनके साथ श्रीहरिहरानन्द लगभग बीस वर्षोंतक काशीके दक्षिण ‘छुछुआ’ के पोखरपर और ‘बनपुरवा’ के पास गंगाजीमें नावपर रहे। कुछ लोगोंको भ्रम था कि स्वामी वीतरागानन्दजीने स्वामी हरिहरानन्दजीको अपना शिष्य बना लिया है। किंतु दोनों संतोंसे जब जानकारी की गयी तो कुछ भी अवगत नहीं हो सका। इतना ही नहीं, दोनों संतोंसे उनके विषयमें कुछ भी जानकारी करनेकी जिज्ञासासे जब कभी किसीने पूछा तो कुछ भी उत्तर नहीं मिला। यह तो संतोंकी अपनी बात है। संतोंकी परम्परामें आत्मप्रकाशन अवांछनीय माना जाता है।

तपोमय जीवन

शनैः-शनैः संत हरिहरानन्दका तपोमय जीवन प्रारम्भ हुआ और उनका जीवन इतना साधना-सम्पन्न हो गया कि लोग दाँतोंतले अँगुली दबाने लगे। यह चर्चा आजसे पाँच दशकसे लेकर साढ़े तीन दशकके बीचकी है। इस तपस्वीके तपोमय जीवनको देखनेवाले अभी हजारों व्यक्ति वाराणसीमें ही हैं। उनके चरण-स्पर्शके बहाने लेखकने उनकी देहका भी स्पर्श किया है, जो



ज्येष्ठकी भयानक दोपहरीमें तपायी हुई थी, माघके जलको जमा देनेवाले शीतको सहन कर चुकी थी और बरसातकी गंगामें जो बीस-बीस घंटेतक शवके समान समाधिस्थ दशामें तैरती रहती थी।

गड़वाघाट (काशीपुरी)-के आगे छोटा मिर्जापुर गाँव है, जो गंगाके किनारेपर है। श्रावण-भादोंकी उफनती गंगामें हरिहरबाबा मिर्जापुरके पास गंगामें बैठ जाते और तैरकर बीच धारामें जाकर समाधि लगा लेते थे तथा शवके समान बहते हुए वरुणा-गंगा-संगमके आगे गंगाके पूर्वी तटपर एक किनारे लग जाते थे। वहाँसे पुनः दक्षिणकी ओर पैदल चल देते थे। गंगाके किनारे जहाँ रात्रि हो जाती, वहीं रुक जाते और बरसातके भयानक वातावरणमें खुले आकाशमें पृथ्वीपर बैठ जाते, कुछ देर सो लेते। यदि कोई भक्त दूध या फल लेकर वहाँ पहुँच जाता तो दूध या फल ग्रहण भी कर लेते; अन्यथा भगवान्‌के भरोसे रात्रि व्यतीत हो जाती थी। यह तथ्य भी जानकारीमें आया कि बाबाके भक्तोंकी संख्या पर्याप्त हो चुकी थी। कोई-न-कोई भक्त रात्रिके घनघोर अन्धकारमें लालटेन आदिके प्रकाशमें हरिहरानन्दजीकी खोज अवश्य करता। वे फल या दूध ही ग्रहण करते थे।

जाड़ेकी भयानक शीतमें योगिराजजीका यही क्रम चलता था और वे गंगाजीमें पैठकर आकण्ठ जलमें खड़े रहकर निदिध्यासन किया करते थे। ज्येष्ठकी तपती दोपहरीमें वे बालुकामें बैठकर समाधि लगाते थे। फलस्वरूप उनके शरीरका चमड़ा हाथीके चमड़े-जैसा बिल्कुल काला और मोटा हो गया था।

अवस्थाका कुछ प्रभाव जब उनपर पड़ने लगा और वे अपनी कायाको जब कुछ अक्षम समझने लगे तो एक नौकापर (काशी-हिंदू-विश्वविद्यालयके पास गंगाके किनारे) रहने लगे। नौकापर रहते हुए भी वे नित्य-क्रिया (मल-मूत्रका त्याग)-के लिये गंगाके दूसरे भाग (पूर्व-तट)-पर ही जाया करते थे। श्रावण-भादोंकी भयानक बाढ़में भी मल-मूत्रका त्याग उन्होंने काशीकी सीमामें नहीं किया।

योगिराजजीके तपोमय जीवनकी कुछ झलक तो

आपको मिल गयी, किंतु उनके तपस्वी और त्यागमय जीवनकी कहानी भी विचित्र और रोचक है। जिन दिनों स्वामी गंगाकी धारामें समाधिस्थ होकर छोटे मिर्जापुर गाँवसे वरुणा-गंगा-संगमकी ओर जाते थे, उस समय उन्हें बहता देखकर घाटपर स्नानार्थी यही समझते थे कि कोई मुद (शव) बहता जा रहा है। हाँ, कुछ परिचित जब बाबाको घाटपरसे ही सिर झुका हाथ जोड़कर अभिवादन करते तो दूसरे अपरिचित भी समझते थे कि कोई योगी योगासन करके श्वास रोककर बहता जा रहा है। जाड़ेके दिनोंमें बाबाको जब किसी गाँवके पास गंगाके किनारे भयानक शीतमें (रात्रिमें) कोई कम्बल, नयी रजाई या दुशाला ओढ़ा देता तो बाबा उसे वहीं छोड़कर प्रातः आगे बढ़ जाते थे। जिसे भी वह मिलता, वही उसे अपने काममें लाता था।

भारतकी यह भी प्रथा है कि देवमूर्ति और गुरुकी पूजाके बाद दक्षिणा (द्रव्य) भी चढ़ायी जाती है। बाबाके पैरोंपर न जाने कितने भक्तोंने खनखनाते चाँदीके सिक्के, रुपये-अठन्नी आदि चढ़ाये होंगे, जिन्हें बाबा यत्र-तत्र छोड़कर आगे बढ़ जाते थे। वे जिसे मिलते वह धन्य हो जाता था।

बाबाकी ठीक अवस्थाका परिज्ञान उनके शरीरत्यागके समय भी नहीं हो सकता था। वास्तवमें योगियोंकी अवस्थाका परिज्ञान शरीरके अवयवोंके द्वारा नहीं जाना जा सकता। उनका जीवन दीर्घ होता है। हरिहर बाबा दीर्घजीवी थे।

संतकी ख्याति

यह तो सर्वविदित है कि संत और योगिजन अपनी आत्म-प्रशंसा और ख्यातिसे दूर भागते हैं। यह सब होते हुए भी संत हरिहरानन्दके विषयमें वाराणसीके पास-पड़ोसके समस्त जिलोंतक ही नहीं, अपितु गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, बंगाल आदि प्रान्तोंके तीर्थयात्री बाबाका दर्शन करके अपने प्रदेशोंमें उनकी चर्चा किया करते थे। महाराज काशीनरेश, सोहावलनरेश, जोधपुरनरेश आदि इन पहुँचे हुए संतके दर्शनसे कई बार तृप्त हुए थे। भारतके अन्तिम वाइसराय लार्ड माउन्टबेटन भी इन योगिराजके दर्शनार्थ एकबार उनके पास असीसंगमपर पहुँचे थे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

स्वामीजीका शरीर जब अत्यन्त जीर्ण होने लगा तो वे साधारण नौकासे हटकर एक बजड़ेमें रहने लगे, जिसका प्रबन्ध किसी दानवीर भक्तने करा दिया था। इन सिद्ध संतकी सेवा-शुश्रूषाके लिये उनके साथ कई अन्य साधु रहते थे। भक्तजन स्वामीजीके लिये जो फलाहार—दूध आदि ले जाते थे, उसीमें सबका काम चल जाता था। काशीमें तीर्थयात्राहेतु आनेवाले यात्री गंगास्नानके बाद बाबा विश्वनाथके दर्शनके सिवा इन सिद्ध संतका भी दर्शन करके अपनी यात्रा सफल मानते थे।

विश्वशान्तियज्ञमें बाबाका पूजन

सन् ४१में 'विश्वशान्तियज्ञ'में सिद्धसंत पूज्य हरिहर बाबाका षोडशोपचार पूजन किया गया था, जिसका अनुष्ठान मालवीयजी महाराजने स्वयं किया था और यज्ञकी सम्पूर्ण सहायता दानवीर बिरलाजीने दी थी।

संत हरिहरानन्द निमीलितचक्षु रहते थे। एक बारके शीतलाप्रकोपसे उनकी एक आँख जाती रही। वे बहुत

कम बोलते थे। बोलनेमें राम-राम, शिव-शिव—यही उच्चारण करते थे। एक बार उनके एक भक्तने साहस करके पूछा था—‘स्वामीजी! आपको यह सिद्धि कैसे मिली?’ स्वामीजीने कहा था—‘चाहना (कामना) चमरिया है, ओके छोड़ देऽ तब सिद्धितऽ अपने-आप पासमें आ जायेऽ।’

एक बार योगीजीसे किसीने कहा—‘महाराज ! काँग्रेस मठ और मन्दिरोंकी सम्पत्ति जब्त कर रही है ।’ संतका कथन था—‘ठीक तऽ हव, साधुअनके सम्पत्ति न चाहीऽ ।’ जिज्ञासुने पुनः कहा—‘महाराज ! राजाओंकी भी सम्पत्ति छीनी जा रही है ।’ संतने उत्तर दिया—‘रजवौ, सब आपन कर्तव्य भूल गइलन ।’

सं० २००६ आषाढ़ शुक्ल पंचमी (प्रथम जुलाई १९४९ ई०)–को संतने गंगाके पावन तटपर असीसंगमपर अपना इह लौकिक शरीर छोड़ दिया। पंचतत्त्व पंचतत्त्वमें विलीन हो गये और बाबाकी अमर साधना सिद्धितक पहुँचकर काशीकी गौरव-गाथामें एक स्वर्ण कडी जोड़ गयी।

प्रेरक-प्रसंग—

दिव्य मन्दिर

प्राचीनकालमें पूजालाल नामके एक संत हो गये हैं। वे बड़े विद्वान् और शंकरके अनन्य भक्त थे, परंतु उन्हें धनका बड़ा अभाव था। शिवजीका एक अत्युत्तम मन्दिर बनवानेकी उनके मनमें बड़ी लालसा थी। उनके इस प्रस्तावको जो सुनता, वही हँस देता और कहता—‘क्या तुम पागल तो नहीं हो गये हो, जो पैसे-पैसेके मुहताज होकर इतने बड़े कामको उठाना चाहते हो? जाओ, इस प्रकारकी बेसिर-पैरकी बातें सुननेके लिये हमारे पास समय नहीं है।’ लोग उन्हें वास्तवमें पागल समझते थे, परंतु संत अपने संकल्पमें अडिग थे, उनका उत्साह मन्द नहीं हुआ। वे मनमें सोचने लगे—यदि पत्थरका मन्दिर बनवानेमें मेरी दरिद्रता बाधक होगी तो मैं अपने हृदयमें उनके लिये एक सोनेका मन्दिर बनवाऊँगा। उसी दिनसे उन्होंने अपने स्वर्णमय हृदयको प्रेमकी ज्वालासे द्रवीभूत करके उसमें आगम-शास्त्रके अनुसार भगवान्का बड़ा सुन्दर मन्दिर बनाना शुरू किया। थोड़े ही दिनोंमें मन्दिर तैयार हो गया और भक्तने अपने भगवान्को उसमें प्रतिष्ठित करनेके लिये उनका आवाहन किया। दैवयोगसे उसी समय उस नगरके राजाने एक सुन्दर मन्दिर बनवाया और उसकी प्रतिष्ठाके लिये भी वही दिन नियत हुआ। भगवान्ने स्वप्नमें राजाको दर्शन दिया और कहा—‘अपने मन्दिरकी प्रतिष्ठाको कुछ दिन स्थगित रखो, आज मुझे अपने अनन्यभक्त पूजालालके द्वारा निर्मित प्रेममन्दिरमें प्रवेश करना है।’ अपने भक्तके संकल्पको सिद्ध करनेके लिये भगवान्ने पूजालालके हृदयमन्दिरमें पदार्पण किया। उनका सारा शरीर भगवान्की दिव्य ज्योतिसे जगमगा उठा। राजाने उनके घर जाकर उनकी वन्दना की। जिन लोगोंने उन्हें पागल कहकर उनकी अवज्ञा की थी, वे सभी अपनी मूर्खतापर पश्चात्ताप करने लगे। इस प्रकार संत लोग अपने हृदयदेशमें वह दिव्य मन्दिर बनाते हैं, जिसमें भगवान् सुदाके लिये आ बिराजते हैं और फिर एक भूषणके लिये भी वहाँसे अलग नहीं होते।

संत-वचनामृत

(वृन्दावनके गोलोकवासी संत पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)

☆ एक व्यक्ति वृन्दावन जा रहा था, दूसरेने कुछ पैसे देकर कहा—‘मेरे लिये एक तुलसीकी माला लेते आना।’ अभी माला आयी नहीं, नाम-जप हुआ नहीं, केवल नाम-जप करनेका विचारमात्र किया था। इतनेमें ही यमराजने कहा—‘अरे चित्रगुप्त! उस माला मँगानेवालेके खातेको खत्म कर दो।’ चित्रगुप्तने कहा—‘महाराज! उसे तो बहुत कर्मोंके फल भोगने हैं।’

यमराज बोले—‘नहीं-नहीं! अब वह नाम-जप के लिये उत्सुक है, उसके ऊपर कृपा हो गयी है। उस जीवके कर्म-बन्धन समाप्त हो गये।’ यही नामाभास है।

☆ ‘रा’का उच्चारण करनेसे पाप बाहर निकल जाते हैं, फिर ‘म’का उच्चारण करनेपर कपाट बन्द हो जाता है; फिर मुखके बन्द होनेपर पाप प्रवेश नहीं कर पाते हैं। अतः ‘हरे राम’ यह महामन्त्र विधि-अविधि जैसे भी जपा जाय कलियुगमें विशेष फलप्रद है—

तुलसी रा के कहत ही निकसत पाप पहार।

पुनि आवन पावत नहीं देत मकार किवार॥

☆ भगवान् कृपाके लिये सदा तत्पर रहते हैं। यदि उनकी कृपा न होती तो हम जिस प्रकार रह रहे हैं, ऐसे नहीं रह पाते। अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियोंकी परवाह न करके प्रभु-स्मरण—भजन करना है। इस संसारमें सारी अनुकूलता मिलना कठिन है। चंचल मनसे भी प्रभु-नाम-स्मरण लाभकारक है। नाम-स्मरणसे सब काम बनेंगे। हम सुख चाहते हैं। शरणागतिमें सुख है। शरणमें हैं, दास हैं, ऐसा ध्यान रहे।

☆ सत्संग और भगवन्नामसे सब दोष दूर हो जाते हैं। सर्वश्रेष्ठ सुगम और सर्वोत्तम साधन है—नाम-जप, सत्संग। इसमें सभी प्रणियोंका अधिकार है। जिह्वासे उच्चारण करते समय यदि कानसे उसे सुनें तो ध्यानसहित

उत्तम जप हो जाता है। ऐसे भक्तको कुण्डलिनी जाग्रत् करनेकी चिन्ता नहीं करनी पड़ती है। अपने पुरुषार्थके बलपर साधना करनेवाले योगी आगे बढ़कर फिर अटक जाते हैं। तब यदि वे शरणागत होकर नाम लेते हैं और प्रभु-कृपाकी प्रतीक्षा करते हैं तो प्रभु उनका हाथ पकड़कर उन्हें उठा लेते हैं। अपनेको असहाय मानकर जो भगवान्का सहारा लेते हैं, उन्हें प्रभु अवश्य अपनाते हैं। हरिः शरणं मम।

☆ जीभरूपी देहलीपर नामरूपी मणिका दीपक रखो तो भीतर और बाहर उजाला रहेगा।

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।

तुलसी भीतर बाहेरहुँ जों चाहसि उजिआर॥

मणिरूपी दीपमें तेल-बत्ती नहीं चाहिये। पवन उसे बुझा नहीं सकेगा। नामरूपी दीपका हृदयमें भी प्रकाश हो जायगा और हृदयका अन्धकार दूर हो जायगा।

☆ केवल इच्छा करनेमात्रसे संसारका कोई काम नहीं बनेगा। उसके लिये तन, मन, धनसे श्रम करना पड़ेगा। परंतु श्रीहरिकी भक्ति उत्कट इच्छामात्रसे प्राप्त हो जायगी। प्रभु हर जीवको सदा देखा करते हैं। मनकी कामनाको पूर्ण करनेके लिये वाणी और शरीरसे कर्म बनने लग जायँगे। मनकी कामनाको पूर्ण करनेके लिये प्राणी परिश्रम करता है। मानसिक परिश्रम श्रेष्ठ है। उसीसे प्रभु प्रसन्न होते हैं। शारीरिक परिश्रमसे संसारी सन्तुष्ट होते हैं। संसार प्रभुका स्वरूप है, ऐसा मानकर उपकार करना भक्ति ही है। अपना स्वार्थ त्यागकर जो कुछ जीवोंके भलेके लिये किया जायगा, उससे भगवान् सन्तुष्ट होंगे। भगवान्के सन्तुष्ट होनेपर सभी देवी-देवता प्रसन्न हो जाते हैं। अतः भगवान्को प्रसन्न करनेके लिये ही यह सब कुछ करना चाहिये। यही शास्त्रका रहस्य है। [‘परमार्थके पत्र-पुष्प’से साभार]

गुरु अलौकिक तत्त्व अथवा शरीर ?

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

शरीरमें गुरु-बुद्धि और गुरुमें शरीर-बुद्धि रखना भारी भूल है; क्योंकि गुरु-तत्त्व अनन्त ज्ञानका भण्डार है। गुरु, हरिहर और सत्यमें भेद नहीं है। गुरु-तत्त्व अनादि अनुत्पन्न तत्त्व है।

गुरुका शाब्दिक अर्थ व्यापक रूपमें लिया जाय तो जिनसे हमें सद्ज्ञान मिले, वे सब गुरु हैं। सबसे पहले गुरु तो माता-पिता ही होते हैं। आगे जीवनमें सभीसे कुछ-न-कुछ अच्छी बातें हम सीखते हैं, जिनमें पुरुष भी होते हैं और स्त्रियाँ भी होती हैं।

वास्तवमें गुरु केवल वही नहीं होता है, जो कानमें मन्त्र फूँककर दीक्षा दे, जिससे हमें गुरु-तत्त्वका प्रकाश मिला वह गुरु ही तो है।

जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको गीताका ज्ञान दिया और वही ज्ञान आज भी मानव जातिको गुरुकी भाँति ज्ञानका प्रकाश प्रदान कर रहा है और आगे भी करता रहेगा। गीताका ज्ञान गुरु ही तो है। सिख सम्प्रदायने गुरुग्रन्थ साहिबको ही गुरु मान लिया है। इस दृष्टिसे विचार किया जाय तो स्पष्ट होगा कि गुरुमें लिंग-भेद मानना उचित नहीं है।

यदि यह कहा जाय कि स्त्री शब्दका तात्पर्य पत्नीसे है, तब भी क्या कोई इस बातको अस्वीकार कर सकता है कि वैवाहिक जीवनमें पत्नी पतिसे और पति पत्नीसे जीवनसम्बन्धी अनेक अच्छी बातें सीखते हैं और ऐसा ही वैवाहिक जीवन सफल और आनन्दपूर्ण होता है। यदि इनमेंसे एकने भी अपनी बुद्धिपर ताला लगाया और दूसरेकी बात सही होनेपर भी मात्र दम्भके कारण स्वीकार न करनेकी जिद्द पकड़ ली, वहीं संघर्ष हो जाता है।

यदि कोई पूछे कि तुलसीदासजीका गुरु कौन था, तो मानना पड़ेगा कि उनकी पत्नी रत्नाजी ही तो उनकी गुरु थीं। बिल्वमंगल और नन्ददासजीके बारेमें भी कुछ ऐसी ही किंवदन्ती है। किसी स्त्रीके ही शब्दोंने उनके जीवनकी दिशा बदल दी।

अतः होना तो यह चाहिये कि जहाँसे भी सद्ज्ञान

प्राप्त हो, उसे बटोरा जाय, स्त्री-पुरुषका भेद न किया जाय, ज्ञान न स्त्री है, न पुरुष।

श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धके सातवें अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णद्वारा अपने मित्र उद्धवजीको उपदेशके अन्तर्गत महाराज यदुको ब्रह्मवेत्ता दत्तात्रेयजीद्वारा सुनाये



गये उपाख्यानका वर्णन है। ब्रह्मवेत्ता दत्तात्रेयजीने कहा— 'राजन्! मैंने अपनी बुद्धिसे बहुत-से गुरुओंका आश्रय लिया है, उनसे शिक्षा ग्रहण करके मैं इस जगत्में मुक्तभावसे स्वच्छन्द विचरता हूँ। तुम उन गुरुओंके नाम और उनसे ग्रहण की हुई शिक्षा सुनो! मेरे गुरुओंके नाम हैं—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंग, भौरा या मधुमक्खी, हाथी, शहद निकालनेवाला, हरिन, मछली, पिंगला वेश्या, कुरर पक्षी, बालक, कुँआरी कन्या, बाण बनानेवाला, सर्प, मकड़ी और भृंगी कीट। राजन्! मैंने इन चौबीस गुरुओंका आश्रय लिया है और इन्हींके आचरणसे इस लोकमें अपने लिये शिक्षा ग्रहण की है।'।

यदि कोई यह जानना चाहे कि किस प्रकार उन्होंने इनसे कुछ सीखा, तो श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धके सातवें अध्यायके श्लोक-संख्या ३६ से आगे पढ़े।

[साधन-सूत्र, प्रस्तुति—श्रीहरीमोहनजी]

गोमाता भारतकी आत्मा हैं

(गोलोकवासी जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्री जी' महाराज)

गौ समस्त प्राणियोंकी परम श्रेष्ठ शरण्य है, यह सम्पूर्ण विश्वकी माता है—‘सर्वेषामेव भूतानां गावः शरणमुत्तमम्’, ‘गावो विश्वस्य मातरः।’ यह निखिला-गमनिगमप्रतिपाद्य सर्ववन्दनीय एवं अमितशक्तिप्रदायिनी दिव्यस्वरूपा है। कोटि-कोटि देवताओंकी दिव्य अधिष्ठान है। इसकी पूजा समस्त देवताओंकी पूजा है। इसका निरादर समस्त देवताओंका निरादर है। यह भारतीय संस्कृतिकी प्रतीकस्वरूपा है। परम दिव्यामृतको देनेवाली सकलहित-कारिणी तथा सम्पूर्ण विश्वका पोषण करनेवाली है। इसकी आराधनासे सकल देववृन्द एवं विश्वनियन्ता भगवान् श्रीसर्वेश्वर अतिशय प्रसन्न होते हैं। तभी तो वे व्रजराजकिशोर ‘गोपाल’ एवं ‘गोविन्द’ बनकर व्रजके वनोपवनोंमें, गिरिराजके मनोरम वनोपवनोंमें तथा कालिन्दीके कमनीय कूलोंपर नंगे चरणों असंख्य गोसमूहके पृष्ठभागमें अनुगमन करते हुए उनकी सेवा-निरत रहा करते थे। अग्निपुराण (२९२।१८) में कहा गया है—

गावः पवित्रं परमं गावो माङ्गल्यमुत्तमम्।

गावः स्वर्गस्य सोपानं गावो धन्याः सनातनाः॥

‘गायें परम पवित्र, परम मंगलमयी, स्वर्गकी सोपान, सनातन एवं धन्यस्वरूपा हैं।’

गवां हि तीर्थे वसतीह गङ्गा पुष्टिस्तथा तद्रजसि प्रवृद्धा।
लक्ष्मीः करीषे प्रणतौ च धर्मस्तासां प्रणामं सततं च कुर्यात्॥

(विष्णुधर्मो० २।४२।५८)

‘गौ-रूपी तीर्थमें गंगा आदि सभी नदियों तथा तीर्थोंका आवास है, उसकी परम पावन धूलिमें पुष्टि विद्यमान है, उसके गोमयमें साक्षात् लक्ष्मी है तथा इन्हें प्रणाम करनेमें धर्म सम्पन्न हो जाता है। अतः गोमाता सदा-सर्वदा प्रणाम करनेयोग्य है।’

शास्त्रोंमें स्थल-स्थलपर गौकी गरिमा, महिमा एवं सर्वोपादेयता निर्दिष्ट की गयी है। गौका दर्शन, स्पर्श और अर्चन परम पुण्यमय है। गायके स्पर्शमात्रसे आयु बढ़ती है। भीष्म पितामहने युधिष्ठिरको महाभारतके अनुशासन-पर्व (५१।२७, ३२) में इस प्रकार उपदेश किया है—

कीर्तनं श्रवणं दानं दर्शनं चापि पार्थिव।

गवां प्रशस्यते वीर सर्वपापहरं शिवम्॥

निविष्टं गोकुलं यत्र श्वासं मुञ्चति निर्भयम्।

विराजयति तं देशं पापं चास्यापकर्षति॥

‘गोमाताकी पुण्यमयी महिमाका कीर्तन, श्रवण, दर्शन एवं उसका दान सम्पूर्ण पापोंको दूर करता है। निर्भय होकर जिस भूमिपर गाय श्वास लेती है, वह परम शोभामयी है, वहाँसे पाप पलायित हो जाता है।’

भगवान् मनुने गोदानका फल बताते हुए कहा है—

‘अनडुहः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम्।’

अर्थात् ‘बैलको देनेवाला अतुल सम्पत्ति तथा गायको देनेवाला दिव्यातिदिव्य सूर्यलोकको प्राप्त करता है।’

जिस भारतके धर्म, संस्कृति और विविध शास्त्र तथा सर्वद्वष्टा तत्त्वज्ञ ऋषि-मुनियों एवं आप्त महापुरुषोंके अनेक उपदेश गोमाताकी दिव्य महिमासे ओत-प्रोत हैं, जिस भारतकी पुण्य वसुन्धरा सदा-सर्वदासे गौके विमल यशसे समग्र विश्वमें अपनी दिव्य धवलिमा आलोकित करती आयी है, जिस भारतमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक, सर्वनियन्ता श्रीसर्वेश्वर भी ‘गोपाल’ बनकर गोमहिमाकी श्रेष्ठता, सर्वमूर्धन्यता बतलाते हैं, उस पवित्र भारतकी दिव्य अवनि गोदुग्ध, गोदधि, गोघृतके स्थानपर गोमाताके रक्तसे रंजित हो, यह बड़े दुर्भाग्यकी बात है!

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक आदि सभी दृष्टियोंसे गोमाता परमोपकारिणी हैं, इसका विनाश राष्ट्रका विनाश है। वह भारतकी अतुलनीय अमूल्य सम्पत्ति है, अतः इसकी रक्षा राष्ट्रकी रक्षा है।

गवां सेवा तु कर्तव्या गृहस्थैः पुण्यलिप्सुभिः।

गवां सेवापरो यस्तु तस्य श्रीवर्धतेऽचिरात्॥

अर्थात् प्रत्येक पुण्यकी इच्छा रखनेवाले सद्गृहस्थको गायोंकी सेवा अवश्य करनी चाहिये; क्योंकि जो नित्य श्रद्धा-भक्तिसे गायोंकी प्रयत्नपूर्वक सेवा करता है, उसकी सम्पत्ति शीघ्र ही वृद्धिको प्राप्त होती है और नित्य वर्धमान रहती है।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

निन्दासे डर नहीं, निन्दनीय आचरणसे डर है

सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपने जो कुछ लिखा है, उससे पता लगता है आप सर्वथा निर्दोष हैं और वे लोग अकारण ही आपपर कलंक लगाकर आपका जी दुखा रहे हैं। संसारमें ऐसा प्रायः हुआ करता है। झूठा कलंक तो लोगोंने श्रीकृष्णपर भी लगा दिया था। जिनको परचर्चा और परनिन्दामें मजा आता है, वे लोग स्वभावतः ही ऐसा किया करते हैं। कुछ लोग बहुत बुरी नीयतसे जान-बूझकर ऐसा करते हैं। पर जिसकी निन्दा की जाती है, वह यदि निर्दोष है, भगवान्‌के सामने सच्चा है तो परिणाममें उसका कदापि अहित नहीं हो सकता। आपको यह समझना चाहिये कि भगवान्‌ आपको कलंक-तापसे तपाकर और भी उज्ज्वल बनाना चाहते हैं। आपके जीवनको सर्वथा निर्मल बनानेके लिये ही ऐसा हो रहा है। आपको इससे डरना नहीं चाहिये, न उद्विग्न ही होना चाहिये। श्रीभगवान्‌ सर्वान्तर्यामी, सर्वतोचक्षु और सदा सर्वत्र वर्तमान हैं, उनसे हमारे मनके भीतरकी भी कोई बात छिपी नहीं है, यदि हम उन भगवान्‌के सामने सच्चे हैं तो फिर हमें किस बातका भय है। साथ ही यह भी याद रखना चाहिये कि कर्मका फल देनेवाले भी भगवान्‌ ही हैं; हमारे कर्मके अनुरूप ही हमें फल मिलेगा। दूसरोंके बकनेसे कुछ भी नहीं हो सकता।

असलमें इस प्रकारकी झूठी निन्दामें जो भगवान्‌की कृपाका अनुभव करते हुए निर्विकार और प्रसन्न रहते हैं, वे ही विश्वासी साधु या भक्त हैं। जो लोग आपकी झूठी निन्दा करते हैं, वे बेचारे तो दयाके पात्र हैं; क्योंकि आपपर मिथ्या कलंक लगाकर अपने ही हाथों अपनी ही हानि कर रहे हैं। इस कुकर्मका फल उन्हें भोगना पड़ेगा। पर आपको तो उनका उपकार मानना चाहिये। आपके लिये तो वे आपका चरित्र निर्मल बनानेमें सहायता कर रहे हैं। उनके प्रति जरा भी द्वेष नहीं करना—

निन्दक नियरे राखिये आँगन कुटी छवाय।

बिनु पानी बिन साबुना निर्मल करै सुभाय॥

संतोंकी यह वाणी याद रखनेयोग्य है। आपका ऐसा भाव होगा तो भगवान्‌ आपपर विशेष प्रसन्न होकर आपकी सहायता करेंगे। हाँ, आप अपने चरित्रको सदा सावधानीसे देखते रहिये। उसमें कहीं जरा-सा भी दोष दिखायी दे तो उसे दूर करनेकी चेष्टा कीजिये। किसीके द्वारा की जानेवाली मिथ्या निन्दासे आपका कुछ भी नहीं बिगड़ेगा, परंतु यदि आपके अन्दर सचमुच दोष होगा, निन्दाके योग्य आचरण या भाव होगा तो जगत्‌के द्वारा प्रशंसा प्राप्त करके भी आप उसके बुरे परिणामसे—अनिष्टसे बच नहीं पायेंगे। अपने मनकी कालिमा ही सच्चा कलंक है, दूसरोंके द्वारा अकारण लगाया जानेवाला कलंक नहीं। शेष प्रभुकृपा।

(२)

आध्यात्मिक शक्ति ही जगत्‌को विनाशसे बचा सकती है

सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। जहाँ जीवनका लक्ष्य केवल कामोपभोग होता है, वहाँ मनुष्यमें धीरे-धीरे समस्त आसुरी सम्पत्तियाँ आ जाती हैं। गीताके सोलहवें अध्यायमें आसुरी सम्पत्तिका वर्णन है। आजका मनुष्य कामोपभोगपरायण है। उसका लक्ष्य भौतिक उन्नति—प्रचुर परिमाणमें जागतिक पदार्थोंकी प्राप्ति है। व्यक्ति और राष्ट्र सभी इसी होड़में लगे हैं। इसीका परिणाम संघर्ष, संहार, अशान्ति तथा दुःख है और भौतिक उन्नतिकी दौड़में लगे हुए जगत्‌के लिये यह अनिवार्य है। भगवान्‌की दिव्यतासे रहित भौतिक उन्नति मानवको रसातलमें ले जाती है; वह उन्नति, प्रगति और विकासके मोहक नामोंपर पतनकी अत्यन्त गहरी गर्तमें गिर जाता है, जिससे उठनेका उसे जन्म-जन्मान्तरतक भी अवकाश नहीं मिलता, वरं उत्तरोत्तर उसे नीची-से-नीची गतिमें जाना पड़ता है। श्रीभगवान्‌ने ऐसे ही मनुष्योंके लिये कहा है—

यह सब देखकर यही कहना पड़ता है कि आजका मानव-जगत् इस समय अवनतिके कालमें है और क्रमशः अवनतिकी ओर ही जा रहा है; क्योंकि बुराई पहले मनमें आती है, पीछे वह क्रियारूपमें प्रकट होती है। आजकी मानव-मनकी यह काम-क्रोधादिपरायणता ही कल विनाशका भीषण स्वरूप धारण करके क्रियारूपमें प्रकट होनेवाली है। यदि इस स्थितिमें परिवर्तन नहीं हुआ, मानव कामोपभोगके लक्ष्यको छोड़कर आध्यात्मिकताकी ओर—भगवान्की ओर न मुड़ा तो तीसरे राक्षसी महायुद्धके रूपमें या अन्य किसी रूपमें उसका पतन या विनाश अवश्यम्भावी है। विनाशके मुखपर बैठे हुए जगत्को यदि कोई शक्ति बचा सकती है तो वह केवल आध्यात्मिक शक्ति ही है। मानव-जातिके शुभचिन्तकोंको चाहिये कि वे स्वयं सावधान हो जायँ और जहाँतक उनकी आवज पहुँचती हो, नम्रता, विनय परंतु दृढ़ताके साथ इस आवाजको पहुँचानेका प्रयत्न करें। शेष प्रभूकृपा

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१९, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, माघ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदादिनमें ८।५६ बजेतक	मंगल	आश्लेषा रात्रिमें २।२९ बजेतक	२२ जनवरी	सिंहराशि रात्रिमें २।२९ बजेसे।
तृतीया रात्रिमें ४।१५ बजेतक	बुध	मघा " १२।५० बजेतक	२३ "	भद्रा सायं ५।२५ बजेसे रात्रिमें ४।१५ बजेतक, मूल रात्रिमें १२।५० बजेतक।
चतुर्थी " २।० बजेतक	गुरु	पू० फा० " ११।१५ बजेतक	२४ "	कन्याराशि रात्रिमें ४।५४ बजेसे, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९।१० बजे, श्रवणका सूर्य रात्रिमें ९।८ बजे।
पंचमी " ११।५६ बजेतक	शुक्र	उ० फा० " ९।५१ बजेतक	२५ "	× × ×
षष्ठी " १०।७ बजेतक	शनि	हस्त " ८।४० बजेतक	२६ "	भद्रा रात्रिमें १०।७ बजेसे, गणतंत्र-दिवस।
सप्तमी " ८।३९ बजेतक	रवि	चित्रा " ७।५२ बजेतक	२७ "	भद्रा दिनमें ९।२३ बजेतक, तुलाराशि दिनमें ८।१६ बजेसे।
अष्टमी " ७।३३ बजेतक	सोम	स्वाती " ७।२३ बजेतक	२८ "	× × ×
नवमी " ६।५६ बजेतक	मंगल	विशाखा " ७।२२ बजेतक	२९ "	वृश्चिकराशि दिनमें १।२२ बजेसे।
दशमी " ६।४६ बजेतक	बुध	अनुराधा " ७।४९ बजेतक	३० "	भद्रा प्रातः ६।५१ बजेसे रात्रिमें ६।४६ बजेतक, मूल रात्रिमें ७।४९ बजेसे।
एकादशी " ७।९ बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा " ८।४८ बजेतक	३१ "	धनुराशि रात्रिमें ८।४८ बजेसे, षटतिला एकादशीव्रत (सबका)
द्वादशी " ८।५ बजेतक	शुक्र	मूल " १०।१८ बजेतक	१ फरवरी	मूल रात्रिमें १०।१८ बजेतक।
त्रयोदशी " ९।२५ बजेतक	शनि	पू०षा० " १२।१० बजेतक	२ "	भद्रा रात्रिमें ९।२५ बजेसे, शनिप्रदोषव्रत।
चतुर्दशी " ११।१२ बजेतक	रवि	उ०षा० " २।२७ बजेतक	३ "	भद्रा दिनमें १०।१९ बजेतक, मकरराशि प्रातः ६।४५ बजेसे।
अमावस्या " १।१३ बजेतक	सोम	श्रवण " ४।५८ बजेतक	४ "	सोमवती-मौनी अमावस्या।

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१९, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, माघ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वदि
प्रतिपदा रात्रिमें ३।२४ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा अहोरात्र	५ फरवरी	कुम्भराशि रात्रिमें ६।१७ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिमें ६।१७ बजे।
द्वितीया रात्रिशेष ५।२९ बजेतक	बुध	धनिष्ठा दिनमें ७।३५ बजेतक	६ "	धनिष्ठाका सूर्य रात्रिमें ११।२० बजे।
तृतीया अहोरात्र	गुरु	शतभिषा " १०।७ बजेतक	७ "	मीनराशि रात्रिशेष ५।५१ बजेसे।
तृतीया प्रातः ७।२२ बजेतक	शुक्र	पू०भा० " १२।२६ बजेतक	८ "	भद्रा रात्रिमें ८।९ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
चतुर्थी दिनमें ८।५५ बजेतक	शनि	उ०भा० " २।२३ बजेतक	९ "	भद्रा दिनमें ८।५५ बजेतक, मूल दिनमें २।२३ बजेसे।
पंचमी " १०।० बजेतक	रवि	रेवती ,, ३।५४ बजेतक	१० "	मेषराशि दिनमें ३।५४ बजेसे, पंचक समाप्त दिनमें ३।५४ बजे, वसन्तपंचमी।
षष्ठी " १०।३७ बजेतक	सोम	अश्विनी सायं ४।५७ बजेतक	११ "	मूल सायं ४।५७ बजेतक।
सप्तमी " १०।४१ बजेतक	मंगल	भरणी " ५।२७ बजेतक	१२ "	भद्रा दिनमें १०।४१ बजेसे रात्रिमें १०।२८ बजेतक, रथसप्तमी, अचलासप्तमी, वृषराशि रात्रिमें ११।२८ बजेसे।
अष्टमी " १०।१५ बजेतक	बुध	कृत्तिका " ५।३० बजेतक	१३ "	कुम्भसंक्रान्ति दिनमें १२।५६ बजे।
नवमी " ९।२० बजेतक	गुरु	रोहिणी " ५।४ बजेतक	१४ "	मिथुनराशि रात्रिमें ४।४१ बजेसे।
दशमी प्रातः ८।० बजेतक	शुक्र	मृगशिरा " ४।१७ बजेतक	१५ "	भद्रा रात्रिमें ७।१० बजेसे रात्रिशेष ६।२० बजेतक, जयाएकादशीव्रत (स्मार्त)।
द्वादशी रात्रिमें ४।२२ बजेतक	शनि	आर्द्रा दिनमें ३।९ बजेतक	१६ "	एकादशीव्रत (वैष्णव)।
त्रयोदशी रात्रिमें २।११ बजेतक	रवि	पुनर्वसु ,, १।४६ बजेतक	१७ "	कर्कराशि दिनमें ८।७ बजेसे, प्रदोषव्रत।
चतुर्दशी " ११।५० बजेतक	सोम	पुष्य " १२।१३ बजेतक	१८ "	भद्रा रात्रिमें ११।५० बजेसे, मूल दिनमें १२।१३ बजेसे।
पूर्णिमा " ९।२६ बजेतक	मंगल	आश्लेषा " १०।३३ बजेतक	१९ "	भद्रा दिनमें १०।३८ बजेतक, सिंहराशि दिनमें १०।३३ बजेसे, माघीपूर्णिमा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१९, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, फाल्गुन कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ७।६ बजेतक	बुध	मघा दिनमें ८।५३ बजेतक	२० फरवरी	मूल दिनमें ८।५३ बजेतक।
द्वितीया सायं ४।५१ बजेतक	गुरु	पू०फा० प्रातः ७।१६ बजेतक	२१ "	भद्रा रात्रिमें ३।३९ बजेसे, कन्याराशि दिनमें १।३ बजेतक।
तृतीया दिनमें २।४६ बजेतक	शुक्र	हस्त रात्रिमें ४।३६ बजेतक	२२ "	भद्रा दिनमें २।४६ बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ८।५६ बजे।
चतुर्थी " १२।५७ बजेतक	शनि	चित्रा " ३।४३ बजेतक	२३ "	तुलाराशि सायं ४।९ बजेसे।
पंचमी " ११।३० बजेतक	रवि	स्वाती रात्रिमें ३।१० बजेतक	२४ "	" " "
षष्ठी " १०।२६ बजेतक	सोम	विशाखा " ३।२ बजेतक	२५ "	भद्रा दिनमें १०।२६ बजेसे रात्रिमें १०।७ बजेतक, वृश्चिकराशि रात्रिमें ९।४ बजेसे
सप्तमी " ९।४८ बजेतक	मंगल	अनुराधा " ३।२३ बजेतक	२६ "	मूल रात्रिमें ३।२३ बजेसे।
अष्टमी " ९।४१ बजेतक	बुध	ज्येष्ठा " ४।१५ बजेतक	२७ "	धनुराशि रात्रिमें ४।१५ बजेसे।
नवमी " १०।५ बजेतक	गुरु	मूल रात्रिशेष ५।३८ बजेतक	२८ "	भद्रा रात्रिमें १०।३४ बजेसे, मूल रात्रिशेष ५।३८ बजेतक।
दशमी " १०।१ बजेतक	शुक्र	पू०षा० अहोरात्र	१ मार्च	भद्रा दिनमें ११।१ बजेतक।
एकादशी " १२।२३ बजेतक	शनि	पू०षा० प्रातः ७।२५ बजेतक	२ "	मकरराशि दिनमें १।५९ बजेसे, विजयाएकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी " २।१० बजेतक	रवि	उ०षा० दिनमें ९।३८ बजेतक	३ "	प्रदोषव्रत।
त्रयोदशी " ४।१० बजेतक	सोम	श्रवण " १२।७ बजेतक	४ "	भद्रा सायं ४।१० बजेसे रात्रिशेष ५।१५ बजेतक, कुम्भराशि रात्रिमें १।२६ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिमें १।२६ बजे, महाशिवरात्रिव्रत।
चतुर्दशी रात्रिमें ६।१८ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा " २।४४ बजेतक	५ "	पू०भा० का सूर्य दिनमें ८।३० बजे।
अमावस्या " ८।२२ बजेतक	बुध	शतभिषा सायं ५।१८ बजेतक	६ "	अमावस्या।

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१९, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-वसन्त-ऋतु, फाल्गुन शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १०।१३ बजेतक	गुरु	पू०भा० रात्रिमें ७।४१ बजेतक	७ मार्च	मीनराशि रात्रिमें १।५ बजेसे।
द्वितीया " ११।४२ बजेतक	शुक्र	उ०भा० " ९।४४ बजेतक	८ "	मूल रात्रिमें ९।४४ बजेसे।
तृतीया " १२।४३ बजेतक	शनि	रेवती ,, ११।२१ बजेतक	९ "	मेघराशि रात्रिमें ११।२१ बजेसे, पंचक समाप्त रात्रिमें ११।२१ बजे।
चतुर्थी " १।१७ बजेतक	रवि	अश्विनी " १२।३० बजेतक	१० "	मूल समाप्त रात्रिमें १२।३० बजे, भद्रा दिनमें १।० बजेसे रात्रिमें १।१७ बजेतक।
पंचमी " १।१७ बजेतक	सोम	भरणी " १।८ बजेतक	११ "	" " "
षष्ठी " १२।४३ बजेतक	मंगल	कृत्तिका " १।१७ बजेतक	१२ "	वृषराशि प्रातः ७।१० बजेसे।
सप्तमी " ११।४९ बजेतक	बुध	रोहिणी " १२।५७ बजेतक	१३ "	भद्रा रात्रिमें ११।४९ बजेसे।
अष्टमी " १०।२६ बजेतक	गुरु	मृगशिरा " १२।१५ बजेतक	१४ "	भद्रा दिनमें ११।८ बजेतक, मिथुनराशि दिनमें १२।३६ बजेसे, होलाष्टकारम्भ।
नवमी " ८।४३ बजेतक	शुक्र	आर्द्रा " ११।११ बजेतक	१५ "	मीनसंक्रान्ति दिनमें ८।१० बजे, खरमासारम्भ, वसन्तऋतु प्रारम्भ।
दशमी " ६।४२ बजेतक	शनि	पुनर्वसु " ९।५१ बजेतक	१६ "	भद्रा रात्रिशेष ५।३६ बजेसे, कर्कराशि सायं ४।१० बजेसे।
एकादशी सायं ४।२८ बजेतक	रवि	पुष्य " ८।१९ बजेतक	१७ "	भद्रा सायं ४।२८ बजेतक, आमलकी एकादशीव्रत (सबका), मूल रात्रिमें ८।१९ बजेसे।
द्वादशी दिनमें २।८ बजेतक	सोम	आश्लेषा " ६।४१ बजेतक	१८ "	सिंहराशि रात्रिमें ६।४१ बजेसे, सोमप्रदोषव्रत, उ०भा० का सूर्य सायं ४।२९ बजे।
त्रयोदशी " ११।४२ बजेतक	मंगल	मघा सायं ५।० बजेतक	१९ "	मूल सायं ५।० बजेतक।
चतुर्दशी " ९।१९ बजेतक	बुध	पू०फा० दिनमें ३।२२ बजेतक	२० "	भद्रा दिनमें ९।१९ बजेसे रात्रिमें ८।१२ बजेतक, कन्याराशि रात्रिमें ९।० बजेसे, व्रत-पूर्णिमा, भद्रा के बाद होलिका दहन।
पूर्णिमा प्रातः ७।३ बजेतक	गुरु	उ०फा० " १।५३ बजेतक	२१ "	पूर्णिमा, होली (वसन्तोत्सव)।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

न मे भक्तः प्रणश्यति

भगवान् श्रीकृष्णद्वारा अपने भक्तोंके कष्टोंके निवारणके अनेक उदाहरण इस कलियुगमें भी मिलते रहते हैं। इस समय एक सच्ची घटना श्रीमद्भगवद्गीताके पाठ करनेवाले पल्टनके एक जवानकी यहाँ दी जा रही है—

द्वितीय विश्व युद्धके समय जब जापानने मलाया, अण्डमान, निकोबार तथा ब्रह्मामें कब्जा कर लिया, तब अंग्रेजोंने अराकानके रास्ते उनपर हमला आरम्भ किया। कुछ हिन्दुस्तानी पल्टनें थीं। उनमें एक पल्टनमें गंगाशंकर नामक एक सिपाही भी था, जो बराबर प्रातः गीताका पाठ किया करता था और तब प्रतिदिनका काम करता था। उसके साथके सिपाही समय-समयपर बड़ा मजाक किया करते थे कि ‘गीतामें भगवान् हैं, क्या तुमने उन्हें देखा?’ वे कहते थे कि सामिष भोजन करो, घासवाला भोजन क्या खाता है? बहादुर बनो। वह मुसकराभर देता था, बाकी कुछ नहीं बोलता था। यदि बोलता था तो यही कि मुझे चारों ओर भगवान् दीख रहे हैं। वह बराबर गीताजीको वर्दीकी जेब (बाँयी जेब)–में रखता था, जहाँ आमतौरपर सिपाही ए०बी० ६४ एम० किताबको रखते हैं।

एक दिन ऐसा हुआ कि रातको जापानियोंके विरुद्ध आक्रमण करनेके लिये हुक्म हुआ। रात अँधेरी थी, सिपाहियोंको जंगलमें हमला करनेके लिये चलना पड़ा। कुछ दूर चलनेपर जापानियोंने आक्रमण कर दिया। दोनों दलोंमें घमासान लड़ाई अँधेरेमें हो गयी। चार बजे सुबहतक जापानी वापस चले गये और ये लोग अपने मुर्दे और आहतोंको उठाने लगे। उन लोगोंने मुर्दोंके बीचमें जब गंगाशंकरकी तरफ हाथ बढ़ाया तब तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि हाथ बढ़ाते ही गंगाशंकर उठ बैठे और चलने लगे। अब सारे-के-सारे जवान आश्चर्यचकित हो गये कि मुर्दोंमेंसे यह कैसे उठा और उसके शरीरको देखने लगे कि इसे गोली कहाँ लगी है?

गंगाशंकरने बाँये पाकेट (जेब)–को खोला। देखनेपर पता चला कि गीताकी पुस्तकपर ही गोली लगी थी, जिसको गोली पार नहीं कर पायी थी। पुस्तक एवं पाकेटका बाहरी भाग ही जला था और चोटसे गंगाशंकर बेहोश हो गया था। उपस्थित लोग तथा ब्रिगेड–कमाण्डर सब कहने लगे—‘गीताजीने ही इसको बचाया है।’ इसलिये हम सबको ज्ञान होना चाहिये कि ईश्वर सर्वत्र है और भक्तोंकी अदृश्य हाथोंसे रक्षा करता है। भगवान्ने गीतामें स्वयं कहा है—‘न मे भक्तः प्रणश्यति।’

—कैप्टन बी०पी० बडोला

(२)

अपरिचित व्यक्तियोंद्वारा की गयी सहायता

घटना २० फरवरी, २०१८ मंगलवारकी है। यह भयावह हादसा आज भी हमारे परिवारकी आँखोंके सामने चलचित्र–सा चलायमान रहता है। घटना मेरे साले श्रीविमलजी मूंदड़ा दिल्ली–निवासीके साथ हुई।

१९ फरवरी २०१८ को वे अपने परिचितके पोतेकी शादीके लिये उदयपुर गये हुए थे। दिनांक २० को प्रातः विवाहसे विदाई लेकर वापस दिल्ली आनेके लिये वे एयरपोर्ट जा रहे थे। उस समय उनके साथ गाड़ीकी आगेवाली सीटपर उनका एक मित्र तथा ड्राइवर बैठा था तथा पीछेकी सीटपर वे स्वयं बैठे थे। अचानक हाईवेपर पीछेसे तीव्र गतिसे आती गाड़ीने जबरदस्त टक्कर मार दी तथा दूसरी ओरसे आ रहे ट्रकसे भी उनकी गाड़ीकी जबरदस्त भिड़न्त हो गयी। इसमें मेरे सालेकी गाड़ी तो चकनाचूर हो गयी तथा आगेवाली सीटपर बैठे दोनों सज्जन मृत्युलोकको प्राप्त हो गये। विमलजी पूरी तरह घायल हो चुके थे, किंतु प्रभु हनुमान्जीकी कृपासे बाल–बाल बच गये। पीछेसे टक्कर मारनेवाली गाड़ीके ड्राइवरकी भी मृत्यु हो गयी। तेज रफ्तार जिन्दगी महानगरोंकी संस्कृति बन गयी है और इसने संवेदनहीनता और स्वार्थपरताको बढ़ावा दिया है। अतः महानगरोंमें

एक दिन श्रीमती यलने स्पझमें देखा कि वे अपने

बागके संलापगृहमें बैठी हैं। सूर्यास्त हो रहा है। अचानक उन्हें प्रतीत हुआ कि एक घुँघराले बाल और मशाल-सी जलती आँखोंवाला पुरुष हाथमें भाला लिये, वृषभपर सवार, बढ़ते हुए अन्धकारसे उन्हींकी ओर आ रहा है एवं कह रहा है—‘मेरे पुत्र सँडवाले देवताको तत्काल भारत भेज; अन्यथा मैं तुम्हारे सारे परिवारका नाश कर दूँगा।’ वे अत्यधिक भयभीत होकर जाग उठीं। दूसरे दिन प्रातः ही उन्होंने उस खिलौनेका पार्सल बनाकर पहली डाकसे ही अपने पतिके पास भारत भेज दिया। श्रीयूल साहबको पार्सल मिला और उन्होंने श्रीगणेशजीकी प्रतिमाको कम्पनीके कार्यालयमें रख दिया। कार्यालयमें श्रीगणेशजी तीन दिन रहे, पर उन तीन दिनोंतक कार्यालयमें सिद्ध-गणेशके दर्शनार्थ कलकत्तेके नर-नारियोंकी भीड़ लगी रही। कार्यालयका सारा कार्य रुक गया। श्रीयूलने अपने अधीनस्थ इंस्योरेंस एजेंट श्रीकेदारबाबूसे पूछा कि ‘इस देवताका क्या करना चाहिये?’ अन्तमें केदारबाबू गणेशजीको अपने घर ७, अभयचरण मित्र स्ट्रीटमें ले गये एवं वहाँ उनकी पूजा प्रारम्भ करवा दी। तबसे सभी श्रीकेदारबाबूके घरपर ही जाने लगे।

इधर वृन्दावनमें स्वामी केशवानन्दजी महाराज कात्यायनी-देवीकी पंचायतन पूजन-विधिसे प्रतिष्ठाके लिये सनातन-धर्मकी पाँच प्रमुख मूर्तियोंका प्रबन्ध कर रहे थे। श्रीकात्यायनी-देवीकी अष्टधातुसे निर्मित मूर्ति कलकत्तेमें तैयार हो रही थी तथा भैरव चन्द्रशेखरकी मूर्ति जयपुरमें बन गयी थी। जब कि महाराज गणेशजीकी प्रतिमाके विषयमें विचार कर रहे थे, तब उन्हें माँका स्वप्नादेश हुआ कि 'सिद्ध गणेशकी एक प्रतिमा कलकत्तेमें केदारबाबूके घरपर है। जब तुम कलकत्तेसे मेरी प्रतिमा लाओ, तब मेरे साथ मेरे पुत्रको भी लेते आना।' अतः स्वामी श्रीकेशवानन्दजीने अन्य चार मूर्तियोंके बननेपर गणपतिकी मूर्ति बनवानेका प्रयत्न नहीं किया।

अन्तमें जब स्वामी श्रीकेशवानन्दजी श्रीश्रीकात्यायनी माँकी अष्टधातुकी मूर्ति पसंद करके लानेके लिये कलकत्ते गये, तब केदारबाबूने उनके पास आकर कहा—‘गुरुदेव! मैं आपके पास वृन्दावन ही आनेका विचार कर रहा था। मैं बड़ी आपत्तिमें हूँ। मेरे पास पिछले कुछ दिनोंसे एक गणेशजीकी प्रतिमा है। प्रतिदिन रात्रिको स्वप्नमें वे मुझसे कहते हैं कि ‘जब श्रीश्रीकात्यायनी माँकी मूर्ति वृन्दावन जायेगी तो मुझे भी वहाँ भेज देना। कृपया आप इन्हें स्वीकार करें।’ गुरुदेवने कहा— ‘बहुत अच्छा, तुम वह मूर्ति स्टेशनपर ले आना। मैं तूफान एक्सप्रेससे जाऊँगा। जब माँ जायगी तो उनका पुत्र भी उनके साथ ही जायगा।’ सिद्ध गणेशजीकी यही मूर्ति भगवती कात्यायनीजीके राधाबाग मन्दिरमें प्रतिष्ठित है।

इनकी वृन्दावनमें बड़ी मान्यता है।

—महन्त स्वामी श्रीविद्यानन्द

(4)

आयुर्वेदिक घरेलू नुस्खे

❖ एक चम्मच मेथीदाना, २ ग्राम काला नमक पीसकर पानीके साथ फंकी लेनेसे पेटकी गैससे आराम मिलता है।

❖ एक चम्मच सौंफको आधा कप पानीमें भिगोकर रखें। पानीको छानकर दूधमें मिलाकर पिलानेसे बच्चोंका पेट फूलना आदि बन्द हो जाता है।

❖ बबूलकी लकड़ीके कोयले एवं लौंग महीन पीसकर सुबह-शाम मंजन करनेसे दाँत साफ तथा दुर्गन्धरहित हो जाते हैं।

❁ अजवायनका चूर्ण छः भाग और पिसा काला नमक एक भाग लेकर मिला लें। इसमेंसे २ ग्राम (आधा चम्मच) गर्म जलसे लेनेपर पेटदर्दमें तुरंत आराम मिलता है। बच्चोंको आधी मात्रामें दें। इससे अफरा, वायुगोला एवं पेटकी गैस भी मिटती है।

—सत्यनारायण सामरिया, सम्पर्क—०९४६०९९४८६०

सच्चा गीतापाठ

श्रीचैतन्यमहाप्रभु सायंकालके समय जंगलोंमें घूमने जाया करते थे। एक दिन वे एक बगीचेमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा एक ब्राह्मण आसन लगाये बड़े ही प्रेमके साथ गद्गद कण्ठसे गीताका पाठ कर रहा है। यद्यपि वह श्लोकोंका उच्चारण अशुद्ध कर रहा था, किंतु पाठ करते समय वह ध्यानमें ऐसा तन्मय था कि उसे बाह्य संसारका पता ही नहीं रहा। वह भावमें मग्न होकर श्लोकोंको बोलता था, उसका सम्पूर्ण शरीर रोमांचित हो रहा था, नेत्रोंसे जल बह रहा था। महाप्रभु बहुत देरतक खड़े-खड़े उसका पाठ सुनते रहे। जब वह पाठ करके उठा, तब महाप्रभुने उससे अत्यन्त ही स्नेहके साथ पूछा—‘क्यों भाई, तुम्हें इस पाठमें ऐसा क्या आनन्द मिलता है, जिसके कारण तुम्हारी ऐसी अद्भुत दशा हो जाती है! इतने ऊँचे प्रेमके भाव तो अच्छे-अच्छे भक्तोंके शरीरमें प्रकट नहीं होते, तुम अपनी प्रसन्नताका मुझसे ठीक-ठीक कारण बताओ?’

उस पुरुषने कहा—‘भगवन्! मैं एक अपठित बुद्धिहीन ब्राह्मण-वंशमें उत्पन्न हुआ निरक्षर और मूर्ख ब्राह्मणबन्धु हूँ। शुद्धाशुद्धका कुछ भी बोध नहीं है। मेरे गुरुदेवने मुझे आदेश दिया था कि तू गीताका नित्यप्रति पाठ किया कर। भगवन्! मैं गीताका अर्थ क्या जानूँ। मैं तो पाठ करते समय इसी बातका ध्यान करता हूँ कि सफेद रंगके चार घोड़ोंसे जुता हुआ एक बहुत सुन्दर रथ खड़ा हुआ है। उसकी विशाल ध्वजापर हनुमान्जी विराजमान हैं, खुले हुए रथमें अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित अर्जुन कुछ शोकके भावसे धनुषको नीचे रखे हुए बैठा है। भगवान् अच्युत सारथीके स्थानपर बैठे हुए कुछ मन्द मुसकानके साथ अर्जुनको गीताका उपदेश कर रहे हैं। बस, भगवान्की इसी रूपमाधुरीका पान करते-करते मैं अपने-आपको भूल जाता हूँ। भगवान्की वह

है, उसीके दर्शनोंसे मैं पागल-सा बन जाता हूँ। लोग मेरे पाठको सुनकर पहले बहुत हँसते थे। बहुत-से तो मुझे बुरा-भला भी कहते थे। अब कहते हैं या नहीं—इस बातका तो मुझे पता नहीं है, किंतु मैंने किसीकी हँसीकी कुछ परवा नहीं की। मैं इसी भावसे पाठ करता ही रहा। अब मुझे इस पाठमें इतना रस आने लगा है कि मैं एकदम संसारको भूल-सा जाता हूँ।

उसकी बात सुनकर महाप्रभु बड़े ही मीठे स्वरसे कहने लगे, 'विप्रवर! तुम धन्य हो, यथार्थमें गीताका असली अर्थ तो तुमने ही समझा है। भगवान् शुद्ध अथवा अशुद्ध पाठसे प्रसन्न या असन्तुष्ट नहीं होते। वे तो भावके भूखे हैं। भावग्राही भगवान्से किसीके मनकी बात छिपी नहीं है। लाखों शुद्ध पाठ करो और भाव अशुद्ध हैं, तो उनका फल अशुद्ध ही होगा। यदि भाव शुद्ध हैं और अक्षर चाहे अशुद्ध भी उच्चारण हो जायँ तो उसका फल शुद्ध ही होगा। भावोंकी शुद्धिकी ही अत्यन्त आवश्यकता है। भाव शुद्ध होनेपर पाठ शुद्ध हो तब तो बहुत ही अच्छा है। सोनेमें सुगन्ध है और यदि पाठ शुद्ध न भी हो तो भी कोई हानि नहीं। जैसा कि कहा है—

मूर्खो वदति विष्णाय धीरो वदति विष्णवे ।

तयोः फलं तु तुल्यं हि भावग्राही जनार्दनः ॥

अर्थात् ‘मूर्ख’ कहता है, ‘विष्णाय नमः’ और पण्डित कहता है ‘विष्णावे नमः’ भाव शुद्ध होनेसे इन दोनोंका फल समान ही होगा। कारण कि भगवान् जनार्दन भावग्राही हैं।’

महाप्रभुके मुखसे इस बातको सुनकर उस ब्राह्मणको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने उसी समय प्रभुको आत्मसमर्पण कर दिया। जबतक प्रभु श्रीरंगक्षेत्रमें रहे, तबतक वह महाप्रभुके साथ ही रहा।

(भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र)

‘कल्याण’

-के १२वें वर्ष (वि०सं० २०७४-७५, सन् २०१८ ई०)-के दूसरे अङ्कसे बारहवें अङ्कतकके निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची

(विशेषाङ्ककी विषय-सूची उसके आरम्भमें देखनी चाहिये, वह इसमें सम्मिलित नहीं है।)

निबन्ध-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- अच्छा पैसा ही अच्छे काममें लगता है [प्रेरक कथा] ... सं०८-पृ०२५		२६- उपनिषदोंमें आये कतिपय आख्याना	
२- अनन्य भगवत्प्रेमसे ही जीवनकी सार्थकता		(डॉ० श्री के० डी० शर्माजी)..... सं०२-पृ०२४	
(श्रीभँवरलालजी परिहार)..... सं०३-पृ०२७		२७- उलाहना भी प्रेमतत्त्व है (डॉ० श्रीअशोकजी पण्ड्या) .. सं०४-पृ०२४	
३- अनमोल बोल सं०९-पृ०२२		२८- उसने क्या कहा ? (पं० श्रीईश्वरचन्द्रजी तिवारी) ... सं०२-पृ०३०	
४- अन्तकालकी भावना (श्रीबरजोरसिंहजी) सं०४-पृ०१८		२९- ऋण लेकर भूलना नहीं चाहिये [प्रेरक-प्रसंग] सं०४-पृ०४२	
५- अन्तकालमें क्या करें ? (श्रीरूपचन्द्रजी शर्मा) सं०१०-पृ०२९		३०- एकमुखी रुद्राक्षकी महिमा सं०७-पृ०३२	
६- अपेक्षाएँ अशान्तिको जन्म देती हैं		३१- कब खुलेंगे तेरे अन्तर्चक्षु ?	
(श्रीबृजमोहनजी गोयल)..... सं०६-पृ०३३		(डॉ० श्रीशैलजाजी अरोड़ा)..... सं०१२-पृ०२२	
७- ‘अब, होउ राम अनुकूल’		३२- कर्मफल [बोधकथा] (श्रीराजेशजी माहेश्वरी)..... सं०९-पृ०१६	
(प्रो० श्रीबालकृष्णजी कुमावत) सं०११-पृ०१९		३३- कर्मफलभोगमें परतन्त्रता सं०८-पृ०१९	
८- अर्जुनका रथ (श्रीराजेन्द्र बिहारीलालजी) सं०१२-पृ०१८		३४- कर्म-मीमांसा (श्रीरूपचन्द्रजी शर्मा) सं०८-पृ०२४	
९- अल्पमें सुख नहीं है (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी		३५- कलियुगके अन्तमें— [कहानी]	
श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) सं०६-पृ०११		(श्रीसुदर्शनसिंहजी ‘चक्र’) सं०१२-पृ०२६	
१०- अहैतुकी कृपा करनेवाले अतिशय दयालु प्रभु		३६- कल्याण—सं०२-पृ०५, सं०३-पृ०५, सं०४-पृ०५, सं०५-पृ०५,	
(श्रीहरी मोहनजी) सं०९-पृ०३२		सं०६-पृ०५, सं०७-पृ०५, सं०८-पृ०५, सं०९-पृ०५, सं०१०-पृ०५,	
११- ‘अहो पथिक कहियो उन हरि सौं...’		सं०११-पृ०५, सं०१२-पृ०५	
(श्रीअर्जुनलालजी बन्सल) सं०२-पृ०२६		३७- कल्याणका आगामी १३वें वर्ष (सन् २०१९ ई०)-का	
१२- अहंकार : विनाशका बीज (डॉ० गो० दा० फेगडे) सं०८-पृ०३१		विशेषाङ्क ‘श्रीराधामाधव-अङ्क’ सं०६-पृ०४८	
१३- आचार्य श्रीशंकरके श्रीचरणोंमें श्रद्धा-सुमन		३८- कामधेनु [कहानी] (श्रीसुदर्शनसिंहजी ‘चक्र’) सं०८-पृ०३७	
(पं० श्रीवैद्यनाथजी अग्निहोत्री) सं०९-पृ०२७		३९- काशीके सिद्धयोगी हरिहरबाबा [संत-चरित] (आचार्य	
१४- आतिथेयी [गोभक्ति-कथा]		श्रीबलरामजी शास्त्री, एम०ए०, साहित्यरत्न) सं०१२-पृ०३२	
(पं० श्रीरामस्वरूपजी पाण्डेय) सं०९-पृ०३८		४०- काष्ठविग्रह भगवान् जगन्नाथके प्राकट्यकी कथा ... सं०७-पृ०३३	
१५- आत्मकल्याणका एक महान् सूत्र—भूल जाओ		४१- कृतज्ञता (श्रीअगरचन्द्रजी नाहटा) सं०९-पृ०१७	
(श्रीअगरचन्द्रजी नाहटा) सं०७-पृ०१५		४२- कृपानुभूति—सं०२-पृ०४६, सं०३-पृ०४६, सं०४-पृ०४६, सं०५-	
१६- आत्मशान्ति—क्यों एवं कैसे ?		पृ०४६, सं०६-पृ०४३, सं०७-पृ०४६, सं०८-पृ०४६, सं०९-पृ०४६,	
(श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी) सं०११-पृ०२९		सं०१०-पृ०४६, सं०११-पृ०४६, सं०१२-पृ०४२	
१७- आनन्दमय जीवनके स्वर्णिम सूत्र		४३- कैकेयीका सती होनेका प्रयास	
(से०नि०बिग्रेडियर श्रीकरणसिंहजी चौहान) सं०४-पृ०२०		(मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय) सं०१०-पृ०९	
१८- आनन्द-स्वरूप (संत श्रीभूपेन्द्रनाथजी सान्याल) सं०३-पृ०१५		४४- क्या सुख-भोग ही जीवन है ? (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी	
१९- इन्द्रदर्पहारिणी भगवती उमा [आवरणचित्र-परिचय] सं०२-पृ०६		श्रीशरणानन्दजी महाराज)[प्रेषक—श्रीहरी मोहनजी] .. सं०८-पृ०४१	
२०- ईश्वर और उनके अवतार		४५- क्षामने दुर्जनको सज्जन बनाया सं०४-पृ०८	
(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) ... सं०११-पृ०३८		४६- खेतीमें अमृतपानीका विशेष लाभ (वैद्य श्रीमती	
२१- ईश्वरीय प्रेमकी सार्थकता (श्रीविजयकुमारजी श्रीवास्तव,		नन्दिनीजी भोजराज, एम०डी० (आयुर्वेद)) सं०११-पृ०४०	
एम०ए०, डी०पी०एड०, साहित्यालंकार) सं०६-पृ०२९		४७- गयाके रुद्रपदतीर्थमें रामजीद्वारा पिण्डदान	
२२- उत्तम गृहवधू (परम पूज्य स्वामी श्रीगोविन्ददेवगिरिजी		[आवरणचित्र-परिचय] सं०९-पृ०६	
महाराज) सं०११-पृ०२५		४८- गीताका प्रथम अध्याय (श्रीब्रह्मचारी महानामव्रतदास,	
२३- उदारता (पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल) सं०६-पृ०८		एम०ए०, पी०एच०डी०) सं०१२-पृ०९	
२४- उद्यमका जादू सं०११-पृ०८		४९- गुरु अलौकिक तत्त्व अथवा शरीर ?	
२५- उनकी क्रीड़ा (गोलोकवासी संत पूज्यपाद		(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) ... सं०१२-पृ०३६	
श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज) सं०२-पृ०११		५०- गृह-दीप बुझते जा रहे हैं! (श्रीरामनाथजी ‘सुमन’) सं०६-पृ०१४	

विषय	पृष्ठ-संख्या
५१- गोमाता भारतकी आत्मा हैं (गोलोकवासी जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वर-शरणदेवाचार्य श्री 'श्री जी' महाराज).....	सं०१२-पृ०३७
५२- गोमूत्रका चमत्कार (श्रीभगवतीलालजी हॉगड)	सं०६-पृ०३९
५३- गोमूत्रके चमत्कार	सं०२-पृ०४२
५४- गोमूत्रसे कैसरका सफल इलाज (श्रीउमेशजी पोरवाल)	सं०३-पृ०४१
५५- गोषु दत्तं न नश्यति (पं० श्रीरामस्वरूपदासजी पाण्डेय)	सं०१०-पृ०३६
५६- 'गोषु पाप्मा न विद्यते' [कहानी] (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')	सं०५-पृ०४०
५७- गौ-महिमा	सं०५-पृ०४२
५८- गौ-लोकमाता [कहानी] (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')	सं०४-पृ०४०
५९- चित्रकूटके घाटपर [आवरणचित्र-परिचय]	सं०८-पृ०६
६०- चेतनाका प्रकाश (पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल)	सं०४-पृ०१४
६१- जगत्का स्वरूप	सं०३-पृ०१२
६२- जा दिन मन पंछी उड़ि जाँहें ! (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) ...	सं०९-पृ०९
६३- जिज्ञासा और उसकी प्रक्रिया (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) ..	सं०४-पृ०९
६४- जीवकी तृप्ति कैसे हो ? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	सं०५-पृ०१०
६५- जीवनकी प्रयोगशाला (पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम०ए०, बी०टी०)	सं०३-पृ०११
६६- जीवनमें नया परिवर्तन (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम० ए०, पी०एच० डी०)	सं०६-पृ०२२
६७- जो तोकों काँटा बुझै, ताहि बोझ तू फूल ! [प्रेरक-प्रसंग] ..	सं०५-पृ०३४
६८- ज्ञान (श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वीतराग स्वामी श्रीदयानन्दगिरिजी महाराज)	सं०११-पृ०९
६९- ज्ञान-कोष [प्रेरक कथा]	सं०३-पृ०२६
७०- तीर्थराज प्रयाग (डॉ० श्रीशिवशेखरजी मिश्र)	सं०१२-पृ०३०
७१- तू ही माता, तू ही पिता है ! (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) ...	सं०२-पृ०१९
७२- तृष्णा (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	सं०११-पृ०१०
७३- दयालु दीनबन्धुके बड़े विशाल हाथ हैं [एक सत्य घटना] (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	सं०५-पृ०२७
७४- दिव्य मन्दिर [प्रेरक-प्रसंग]	सं०१२-पृ०३४
७५- दुर्गासप्तशतीमें 'नमस्तस्यै' पदकी पुनरावृत्तिका रहस्य (श्रीकैलाश पंकजजी श्रीवास्तव)	सं०१०-पृ०२०
७६- दुर्जनसे दूर रहें	सं०२-पृ०३१
७७- दुर्जन-संगका फल [प्रेरक-प्रसंग]	सं०४-पृ०३२
७८- दूसरोंकी तृप्तिमें तृप्ति [प्रेरक-प्रसंग]	सं०५-पृ०१२
७९- दैवी विपत्तियाँ और उनसे बचनेका उपाय (नित्यलीला-लीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	सं०३-पृ०१३
८०- नकद धर्म (श्रीनन्दलालजी टॉटिया)	सं०१०-पृ०८
८१- नथ [संत-चरित] (श्रीशिवचरणजी चौहान)	सं०१०-पृ०२८
८२- निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची	सं०१२-पृ०४७
८३- निवेदिता [कहानी] (श्रीशंकरलालजी माहेश्वरी)	सं०१०-पृ०३२
८४- पथिक [आध्यात्मिक कथा] (श्रीसत्यप्रकाशजी किरण)	सं०३-पृ०२५
८५- परम योग [कहानी] (श्रीसुदर्शन सिंहजी 'चक्र')	सं०६-पृ०२५
८६- परमात्माके दर्शनमें बाधक कौन ? (डॉ० श्रीरामेश्वरप्रसादजी गुप्त)	सं०४-पृ०२६
८७- परमात्मप्राप्तिका साधनरूप रथ-रथी-रूपक	सं०१२-पृ०८
८८- परमात्माकी प्राप्तिके लिये निराश नहीं होना चाहिये (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	सं०५-पृ०७

विषय	पृष्ठ-संख्या
८९- पर हित सरिस धर्म नहीं भाई (श्रीसीताराम गुप्ताजी) ...	सं०५-पृ०१८
९०- परिवर्तनशीलके लिये सुख-दुःख क्या मानना [प्रेरक-कथा]	सं०६-पृ०१६
९१- परिवारमें परस्पर प्रेमका महत्त्व (श्रीअर्जुनलालजी बंसल)	सं०७-पृ०२३
९२- पवनसुतके लंका-प्रवासकी एकादश उपलब्धियाँ (डॉ० श्रीगार्गीशरण मिश्रजी 'मराल')	सं०५-पृ०२१
९३- परब्रह्म परमेश्वरके अवतारतत्त्वका रहस्य (श्रीजगदीशप्रसादजी गुप्ता)	सं०१०-पृ०१८
९४- पर्वताकार श्रीहनुमान्जी [आवरणचित्र-परिचय]	सं०६-पृ०६
९५- पढ़ो, समझो और करो—सं०२-पृ०४७, सं०३-पृ०४७, सं०४-पृ०४७, सं०५-पृ०४७, सं०६-पृ०४४, सं०७-पृ०४७, सं०८-पृ०४७, सं०९-पृ०४७, सं०१०-पृ०४७, सं०११-पृ०४७, सं०१२-पृ०४३	
९६- पाप और पुण्य—हिंसा और अहिंसा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	सं०९-पृ०७
९७- पुण्य और पाप (श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वीतराग स्वामी श्रीदयानन्दगिरिजी महाराज)	सं०८-पृ०१४
९८- पुरुषोत्तममासका महत्त्व एवं कर्तव्य	सं०४-पृ०२३
९९- प्रकृति (श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वीतराग स्वामी श्रीदयानन्दगिरिजी महाराज)	सं०१०-पृ०१४
१००- प्रतीक्षा (श्रीहरिचन्द्रजी अष्टाना 'प्रेम')	सं०७-पृ०३४
१०१- ब्रह्मचर्य (श्रीकैलाशचन्द्रजी शर्मा)	सं०२-पृ०३७
१०२- भक्तकी साधना [गद्य-काव्य] (श्रीछैलबिहारीजी गुप्त 'छैल')	सं०१०-पृ०२२
१०३- भक्त जलारामजी [संत-चरित] (शास्त्री श्रीमंगलजी उद्धवजी पुरोहित)	सं०४-पृ०३३
१०४- भक्त नीलाम्बरदास [संत-चरित]	सं०११-पृ०३३
१०५- भक्ति—अर्थ एवं स्वरूप (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) .	सं०३-पृ०१६
१०६- भक्ति और उसकी प्राप्तिके साधन (श्रीमती विश्वमोहिनीजी, एम० ए०)	सं०८-पृ०२०
१०७- भगवती श्रीगायत्री [आवरणचित्र-परिचय]	सं०४-पृ०६
१०८- भगवती श्रीलक्ष्मीजी [आवरणचित्र-परिचय]	सं०११-पृ०६
१०९- भगवत्प्रेमका रहस्य [प्रेरक-प्रसंग—]	सं०७-पृ०१४
११०- भगवद्गुण-महिमा	सं०११-पृ०३६
१११- भगवद्दर्शन (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	सं०४-पृ०१२
११२- भगवान्की दया (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	सं०११-पृ०७
११३- भगवान्की प्राप्ति करानेवाले उत्तम गुण और आचरण (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	सं०३-पृ०८
११४- भगवान्की प्राप्तिके कुछ सरल और निश्चित उपाय (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	सं०२-पृ०७
११५- भगवान्के अवतार लेनेका कारण (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) .	सं०६-पृ०३५
११६- भगवान् नारायणका भजन ही सार है	सं०५-पृ०३७
११७- भगवान् व्यास [आवरणचित्र-परिचय]	सं०७-पृ०६
११८- भगवान् शंकर (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	सं०२-पृ०२१
११९- भगवान् श्रीशिव और भगवान् श्रीराम (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	सं०१२-पृ०१३
१२०- भारतीय आयुर्वेद चिकित्सा-जगत् का मूलाधार है (आचार्य डॉ० श्री वी०के० अस्थाना)	सं०६-पृ०३१
१२१- भारतीय संस्कृतिमें पशु-पक्षियोंका महत्त्व (श्रीइन्द्रलालजी शास्त्री विद्यालंकार)	सं०५-पृ०३१

विषय	पृष्ठ-संख्या
१२२- भ्रष्टाचार और उससे बचनेका उपाय (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	सं०२-पृ०१५
१२३- मन-इन्द्रियोंको वशमें करके परमात्माको प्राप्त करें (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	सं०१२-पृ०७
१२४- मनकी चमत्कारी शक्तियाँ (पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम०ए०)	सं०७-पृ०८
१२५- मनन करने योग्य—सं०२-पृ०५०, सं०३-पृ०५०, सं०४-पृ०५०, सं०५-पृ०५०, सं०६-पृ०४७, सं०७-पृ०५०, सं०८-पृ०५०, सं०९-पृ०५०, सं०१०-पृ०५०, सं०११-पृ०५०, सं०१२-पृ०४६	
१२६- मनुष्य-जीवनके कुछ दोष (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	सं०७-पृ०१२
१२७- ममताके रोगकी चिकित्सा (मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय) [प्रेषक—श्रीअमृतलालजी गुप्ता]	सं०८-पृ०९
१२८- महल नहीं, धर्मशाला	सं०४-पृ०२५
१२९- महर्षि वसिष्ठजीको नमस्कार -	सं० ११-पृ २४
१३०- महागौरी [आवरणचित्र-परिचय]	सं०१०-पृ०६
१३१- महात्माओंका प्रभाव (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	सं०८-पृ०७
१३२- महात्माओंकी महिमा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	सं०७-पृ०७
१३३- महात्मा पूनतानम् [संत-चरित] (श्रीरामलाल)	सं०८-पृ०३३
१३४- महाभारत-लेखन [आवरणचित्र-परिचय]	सं०१२-पृ०६
१३५- महाशिवरात्रिव्रतकी कथा और माहात्म्य (आचार्य श्रीरामगोपालजी गोस्वामी, एम०ए०, एल०टी०, साहित्यरत्न, धर्मरत्न)	सं०२-पृ०३२
१३६- मानव-जीवनका सर्वोत्तम कार्य (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	सं०४-पृ०७
१३७- मानसमें माँ सरस्वतीकी महिमा (श्रीराजकुमारजी अरोड़ा)	सं०२-पृ०२८
१३८- मानस रोग (श्रीगोपालदत्तजी सारस्वत)	सं०८-पृ०२८
१३९- मानसिक शक्तिसे रोगोंका उपचार (श्रीलालजी रामजी शुक्ल, एम०ए०)	सं०८-पृ०१७
१४०- मुक्तिके प्रति भी निष्कामता [प्रेरक-प्रसंग]	सं०५-पृ०१६
१४१- मूर्ति या छविमें भगवान् (रायसाहेब श्रीकृष्णलालजी बाफणा)	सं०३-पृ०३६
१४२- मेरे कारण कोई झूट क्यों बोले [प्रेरक-प्रसंग]	सं०३-पृ०१८
१४३- मेरे मौजी! (श्रीइन्दरचन्दजी तिवारी)	सं०५-पृ०३०
१४४- 'मेरे साँवरे! तेरी कृपा है' (डॉ० श्रीगोपालजी नारसन) [प्रेषक—श्रीनन्दकिशोरजी मित्तल]	सं०४-पृ०२८
१४५- मैडम ब्लैवट्स्कीकी परदुःखकातरता [प्रेरक-प्रसंग] ...	सं०५-पृ०१९
१४६- मैं तुम्हारे अंग-संग हूँ [प्रे०—श्री एम०के० रायजी].सं०३-पृ०२३	
१४७- मोह रोगकी चिकित्सा (मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय) ...	सं०११-पृ०१३
१४८- योगवासिष्ठका मन्तव्य (श्रीगोपालजी 'स्वर्णकिरण').सं०७-पृ०२०	
१४९- योगवासिष्ठमें प्रारब्ध और पुरुषार्थ-विवेचन (श्रीरामकिशोरसिंहजी 'विरागी')	सं०११-पृ०२२
१५०- रामकथाकी महिमा	सं०५-पृ०१४
१५१- रामकथाके श्रवणका उद्देश्य (मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय)	सं०५-पृ०१३
१५२- रामकी शंकाका निवारण (डॉ० श्रीमती मीनाजी गुप्ता).सं०११-पृ०३१	
१५३- राम पदारविंदु अनुरागी—श्रीलक्ष्मण (श्रीजगदीशप्रसादजी गुप्ता)	सं०७-पृ०२७
१५४- रुद्राक्षकी उत्पत्ति, धारण-विधि और माहात्म्य	सं०७-पृ०३०
१५५- लक्ष्मी कहाँ रहती हैं? (धर्मभूषण पं० श्रीमुकुटविहारिलालजी शुक्ल)	सं०५-पृ०३५

विषय	पृष्ठ-संख्या
१५६- लक्ष्मीका वास कहाँ है?	सं०६-पृ०१८
१५७- वर्तमान शिक्षा-व्यवस्थामें मूल्यपरकताकी आवश्यकता (डॉ० श्रीरविशेखरजी वर्मा, एम०ए०, पी-एच०डी०)..	सं०४-पृ०३०
१५८- वल्लभसम्प्रदाय और उसके अष्ट कवि (श्रीआनन्दकुमार शुक्ला, वरिष्ठ शोध अध्येता)	सं०४-पृ०३६
१५९- विकासका भयावह पक्ष (श्रीगणेशदत्तजी दुबे)	सं०११-पृ०२७
१६०- विचारोंपर नियन्त्रण (पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल) ...	सं०५-पृ०९
१६१- विद्या-प्राप्तिके महत्त्वपूर्ण सूत्र [एक कल्याणप्रेमी]	सं०६-पृ०१९
१६२- विपत्तियोंका सामना धैर्यसे करें (श्रीरमेशचन्द्रजी बादल)	सं०८-पृ०२३
१६३- विरह (श्रीइन्दरचन्दजी तिवारी)	सं०१०-पृ०२६
१६४- वृक्षारोपण-माहात्म्य (पं० श्रीवासुदेवकृष्णजी चतुर्वेदी, व्याकरण-पुराणेतिहासकार्य, एम०ए०, साहित्यरत्न)..	सं०७-पृ०२५
१६५- वृद्धावस्था (वैद्य श्रीमोहनलाल गुप्तजी)	सं०६-पृ०२७
१६६- व्यक्तिका कल्याण और सुन्दर समाजका निर्माण (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) ...	सं०१०-पृ०३५
१६७- व्रतोत्सव-पर्व— [चैत्रमासके व्रतपर्व] सं०२-पृ०४५, [वैशाखमासके व्रतपर्व] सं०३-पृ०४५, [ज्येष्ठमासके व्रतपर्व] सं०४-पृ०४५, [ज्येष्ठमासके व्रतपर्व] सं०५-पृ०४५, [आषाढमासके व्रतपर्व] सं०६-पृ०४२, [श्रावणमासके व्रतपर्व] सं०७-पृ०४५, [भाद्रपदमासके व्रतपर्व] सं०८-पृ०४५, [आश्विनमासके व्रतपर्व] सं०९-पृ०४३, [कार्तिकमासके व्रत-पर्व] सं०१०-पृ०४०, [मार्गशीर्षमासके व्रतपर्व] सं०११-पृ०४४, [पौष-मासके व्रतपर्व] सं०११-पृ०४५, [माघमासके व्रतपर्व] सं०१२-पृ०४०, [फाल्गुनमासके व्रतपर्व] सं०१२-पृ०४१	
१६८- शराणागति-तत्त्व (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	सं०७-पृ०३६
१६९- शेषावतार भागवान् बलराम [आवरणचित्र-परिचय]	सं०५-पृ०६
१७०- श्रमका फल [प्रेरक-प्रसंग]	सं०९-पृ०४२
१७१- श्रीकनकभवन—भगवान् श्रीरामका लीला-निकेतन [आवरणचित्र-परिचय]	सं०३-पृ०६
१७२- श्रीकृष्णप्रेमभिखारी [सन्त-चरित] (श्रीराधेश्यामजी बंका)	सं०७-पृ०३७
१७३- श्रीकृष्ण-लीलाके अन्ध-अनुकरणसे हानि (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	सं०८-पृ०१३
१७४- श्रीगुरु गोरखनाथजीका जीवन-दर्शन (साहित्याचार्य रावत श्रीचतुर्भुजदासजी चतुर्वेदी) ...	सं०२-पृ०३५
१७५- श्रीचैतन्यका महान् त्याग [प्रेरक-प्रसंग]	सं०६-पृ०१३
१७६- श्रीप्रयागाष्टकम्	सं०१२-पृ०३१
१७७- श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना	सं०१०-पृ०४१
१७८- श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना	सं०१०-पृ०४४
१७९- श्रीभास्करराय (भासुरानन्दनाथ) [संत-चरित] (श्री 'मातृशरण')	सं०९-पृ०३५
१८०- श्रीराम और भरतका अनिर्वचनीय प्रेम (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	सं०१०-पृ०७
१८१- श्रीरामचरितमानसमें वर्णित मानस रोग	सं०८-पृ०३०
१८२- श्रीरामचरितमानसमें शक्तितत्त्वरूपण (श्रीराधानन्दसिंहजी)	सं०१०-पृ०३०
१८३- श्रीरामराज्यकी महिमा (श्रीअजुनलालजी बंसल) ...	सं०८-पृ०२६
१८४- श्रीसूरदासजीका होली-वर्णन (पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)	सं०३-पृ०१९
१८५- सत्यका स्वरूप (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	सं०५-पृ०२५
१८६- सत्संगकी महिमा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	सं०६-पृ०७

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१८७- सपनोंको यथार्थमें कैसे बदलते हैं ? (श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला)	सं०३-पृ०३१	२०१- संतकी विचित्र असहिष्णुता	सं०२-पृ०१८
१८८- सबका कल्याण हो ! (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	सं०१०-पृ०११	२०२- संतकी सहनशीलता [प्रेरक-प्रसंग]	सं०९-पृ०२०
१८९- सबसे अपवित्र है क्रोध [प्रेरक-प्रसंग]	सं०४-पृ०३९	२०३- संत-वचनमृत (वृन्दावनके गोलोकवासी संत पूज्य श्रीगणेशदास भक्तमालीजीके उपदेशपरक पत्रोंसे) —	सं०९-पृ०२३, सं०१०-पृ०२७, सं०११-पृ०३०, सं०१२-पृ०३५
१९०- सभीका ईश्वर एक [प्रेरक-प्रसंग]	सं०९-पृ०३०	२०४- संत श्रीदेवराहा बाबाके वचनमृत (वैकुण्ठवासी श्री श्री १००८ श्रीगोकुलदासजीद्वारा संकलित) [प्रेषक—श्रीललनप्रसादजी सिन्हा]	सं०३-पृ०२४
१९१- सरयू रामायणके हनुमान् (डॉ० श्री ए० बी० साईप्रसादजी)	सं०१०-पृ०२३	२०५- संत-संस्मरण (परमपूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार) —	सं०९-पृ०३१, सं०१०-पृ०३४, सं०११-पृ०३७, सं०१२-पृ०२९
१९२- सात दिनका मेहमान [कहानी] (पं० श्रीमंगलजी उद्धवजी शास्त्री, 'सद्विद्यालंकार') .	सं०९-पृ०२४	२०६- संतोंके लक्षण	सं०५-पृ०३९
१९३- सादगी [कहानी] (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')	सं०३-पृ०३३	२०७- संयमका प्रथम सोपान—वाक्संयम [प्रेरक-प्रसंग] [प्रेषक—श्रीअरुणजी गुप्ता]	सं०८-पृ०३२
१९४- साधकोंके प्रति— संसारमें रहनेकी विद्या [सं०३-पृ०१७], निष्कामभावनासे लाभ और सकामभावनासे हानि [सं०४-पृ०१६], निष्कामतासे लाभ और सकामतासे हानि [सं०५-पृ०१५], ज्ञानाग्निसे पापोंका नाश [सं०६-पृ०१७], मुक्ति [सं०७-पृ०१७], सत् और असत् [सं०८-पृ०१५], केवल भगवान् ही अपने हैं [सं०९-पृ०२१] शरणागतिका तत्त्व [सं०१०-पृ०१५], संसारसे निराशा, भगवान्की आशा [सं०११-पृ०१७], नित्य-प्राप्त परमात्म-तत्त्व [सं० १२-पृ० १७]		२०८- संसारके सुखोंकी अनित्यता [बोध-कथा]	सं०३-पृ०१०
१९५- साधन-सूत्र (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)	सं०५-पृ०२०	२०९- संस्कृति की दो धाराएँ [पर्यावरण-चिन्तन] (श्रीनन्दलालजी टॉटिया)	सं०५-पृ०२८
१९६- साधनामें दैन्यभावका महत्त्व (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	सं०९-पृ०१४	२१०- स्वप्नमें गोदर्शनका फल	सं०७-पृ०४२
१९७- साधनोपयोगी पत्र—सं०२-पृ०४३, सं०३-पृ०४३, सं०४-पृ०४३, सं०५-पृ०४३, सं०६-पृ०४०, सं०७-पृ०४३, सं०८-पृ०४३, सं०९-पृ०४४, सं०१०-पृ०३८, सं०११-पृ०४२, सं०१२-पृ०३८		२११- स्वामी विवेकानन्दने कहा था (डॉ० श्रीशोभनाथलाल 'सौमित्र')	सं०१२-पृ०२४
१९८- साँड़ देवता [कहानी] (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र') .	सं०७-पृ०४०	२१२- स्वामी शिवरामकिंकर योगत्रयानन्दजी [सन्त-चरित] (पं० श्रीमहेन्द्रनाथजी भट्टाचार्य)	सं०६-पृ०३७
१९९- सिद्धावधूत श्रीदयालदास स्वामी	सं०५-पृ०३८	२१३- स्वामी श्रीविशुद्धानन्दजी सरस्वती [सन्त-चरित] (महामहोपाध्याय पं० श्रीप्रमथनाथजी तर्कभूषण) ...	सं०३-पृ०३८
२००- सूर्यस्नानका आनन्द (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	सं०१२-पृ०१४	२१४- हमारा दुःख कैसे दूर हो ? (स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज)	सं०५-पृ०१७
		२१५- हीरेकी तरह कीमती कैसे बनें (श्रीसीतारामजी गुप्ता)	सं०६-पृ०३४

संकलित-सामग्री

१- 'अधर धरि मुरली स्याम बजावत'	सं०८-पृ०३	७- राजा चित्रकेतुको भगवान् शेषके दर्शन	सं०१०-पृ०३
२- काशीमुक्ति	सं०२-पृ०३	८- शुक्लाम्बर शशिवर्ण भगवान् विष्णुका ध्यान	सं०५-पृ०३
३- गणपति-स्तवन	सं०९-पृ०३	९- श्रीसीता-अनसूया-मिलन	सं०७-पृ०३
४- 'झूलत राम पालने सोहैं'	सं०६-पृ०३	१०- संजय-धृतराष्ट्र-संवाद	सं०१२-पृ०३
५- नारदजीका भक्तिको उपदेश	सं०३-पृ०३	११- हनुमत्कृत श्रीरामस्तुति	सं०११-पृ०३
६- परशुराम-लक्ष्मण-संवाद	सं०४-पृ०३		

पद्य-सूची

१- गोपियोंके स्वर (श्रीमती करुणा मिश्रा)	सं०९-पृ०३१	९- श्रीकनकभवन-बिहारीकी छवि-माधुरी	सं०३-पृ०७
२- 'जो मोहि राम लागते मीठे'	सं०११-पृ०२६	१०- श्रीसरस्वती-स्तुति (डॉ० श्रीमनोजकुमारजी तिवारी 'तत्त्वदर्शी')	सं०२-पृ०२७
३- 'तू दे ऐसा वरदान मुझे' (श्रीमहेशचन्द्रजी त्रिपाठी)	सं०४-पृ०१७	११- श्रीहनुमान-स्तुति (श्रीगजेन्द्रसिंहजी 'गुरुदास.')	सं० ४-पृ० १५
४- 'प्यारे! राम रसायन पी ले' (आचार्य श्रीभगवतजी दुबे)	सं०४-पृ०२९	१२- सदुपदेश (गिरधर कविराय)	सं०३-पृ०३७
५- बालरूप रामकी झाँकी (श्रीसनातन कुमारजी वाजपेयी 'सनातन')	सं० १०-पृ० १९	१३- 'सबसों ऊँची प्रेम सगाई' [सूरसागर]	सं०६-पृ०३०
६- भगवान् कृष्णका प्राकट्य (श्रीरामेश्वरजी पाटीदार) [प्रेषक—श्रीअशोकजी चौरी]	सं०८-पृ०४२	१४- संतोंका चरित्र (श्रीरामचरितमानस)	सं० ९-पृ० ३७
७- योगिराज शिवका सौन्दर्य (श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०)	सं०२-पृ०२३	१५- 'हे देव परम महादेव प्रभू' (श्रीशिवकुमारसिंहजी 'शिवम')	सं०१०-पृ०१०
राम-दर्शन (चैतन्य कविमन्त्री विशारद)	सं०३-पृ०३२	१६- हे हुलसी-सुत! तुलसी (डॉ० श्रीगोविन्दराजजी अस्थाना)	सं०७-पृ०११

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

सरल गीता (कोड 2178) सजिल्द, श्लोकार्थसहित, [पुस्तकाकार]—प्रस्तुत पुस्तकको गीताजीका सही उच्चारण सीखनेवाले सामान्य पाठकोंकी सुविधाके लिये प्रत्येक चरणके कठिन शब्दोंको सामासिक चिह्नोंसे अलग करके दो रंगोंमें छापा गया है। इससे श्लोकके प्रत्येक चरणको समझनेमें सहायता मिलेगी। मूल्य ₹50 (कोड 2099) अजिल्द मूल्य ₹35, (कोड 2164) गुजराती। मूल्य ₹35 (मराठी, ओड़िआ, नेपाली, अंग्रेजीमें भी उपलब्ध)

दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ [रंगीन] (कोड 2177) (असमिया)—इस पुस्तकमें उत्कृष्ट आदर्शोंके प्रेरणास्रोत 23 दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाओंके छोटे-छोटे सचित्र चरित्र प्रकाशित किये गये हैं। विभिन्न सद्गुणोंके प्रेरक ये चरित्र बालक-बालिकाओंके लिये पठनीय तथा उपयोगी हैं। मूल्य ₹15

महाकुम्भ-पर्व (कोड 1300) पुस्तकाकार—इस पुस्तकमें महाकुम्भ-पर्वके उद्भव-विकास एवं माहात्म्यका वेदों एवं पुराणोंके आधारपर सरल भाषामें सुन्दर परिचय दिया गया है। पुस्तकके अन्तमें तीर्थोंमें पालनीय नियमोंका भी उल्लेख किया गया है। मूल्य ₹5

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—व्रत-कथाओंकी पुस्तकें

व्रत-परिचय (कोड 610)—प्रस्तुत पुस्तकमें प्रत्येक मासमें पड़नेवाले व्रतोंके विस्तृत परिचयके साथ उन्हें सही ढंगसे सम्पादित करनेकी विधि दी गयी है। इसके अतिरिक्त इसमें परिशिष्ट प्रकरणके अन्तर्गत अधिमासव्रत, संक्रान्तिव्रत, अयनव्रत, पक्षव्रत, वारव्रत, प्रायश्चित्तव्रत तथा अन्तमें वटसावित्री, मङ्गला गौरी, संकष्टचतुर्थी, ऋषिपञ्चमी, शिवरात्रि आदि विभिन्न व्रतोंकी सुन्दर कथाएँ दी गयी हैं। मूल्य ₹50

एकादशीव्रतका माहात्म्य (मोटा टाइप) कोड 1162—इस पुस्तकमें पद्मपुराणके आधारपर 26 एकादशियोंके माहात्म्य तथा विधिकी बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। मूल्य ₹25

वैशाख-कार्तिक-माघमास-माहात्म्य (कोड 1136)—शास्त्रोंमें माघ, कार्तिक तथा वैशाखमासका विशेष महत्त्व है। इन महीनोंमें किये गये पुण्य अक्षय होते हैं। इस पुस्तकमें पद्मपुराण तथा स्कन्दपुराणमें वर्णित इन तीनों महीनोंके माहात्म्यका वर्णन किया गया है। मूल्य ₹40

श्रावणमास-माहात्म्य [सानुवाद] (कोड 1899)—इसमें सोमवार आदि प्रत्येक दिनके व्रतोंके सुन्दर विवेचनके साथ मंगलागौरी, स्वर्णगौरी, दूर्वागणपति, संकटनाशन, नागपंचमी, रक्षाबन्धन आदि व्रतोंका सुन्दर वर्णन है। मूल्य ₹35

श्रीसत्यनारायणव्रतकथा (कोड 1367)—इस पुस्तकमें भगवान् सत्यनारायणके पूजनविधिके साथ स्कन्दपुराणसे उद्धृत सत्यनारायणव्रतकथाको भावार्थसहित दिया गया है। मूल्य ₹15

गीता-दैनन्दिनी — (सन् 2019) के सभी संस्करण उपलब्ध मँगवानेमें शीघ्रता करें

(प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य—नित्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।)

		डाक खर्च	
पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (कोड 1431)	गीता-मूल, हिन्दी-अनुवाद,	मूल्य ₹80	₹25
”	” (बँगला अनुवाद (कोड 1489), ओड़िआ अनुवाद (कोड 1644),		
	तेलुगु अनुवाद (कोड 1714)	मूल्य ₹80	₹25
सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 503)		गीताके मूल श्लोक एवं सूक्तियाँ	मूल्य ₹65 ₹25
पॉकेट साइज—	सजिल्द आवरण (कोड 506)	गीता-मूल श्लोक,	मूल्य ₹35 ₹20



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with

By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

पाठकोंके लिये आवश्यक सूचना

1. 'कल्याण' एवं 'गीताप्रेस-पुस्तक-बिक्री-विभाग' की व्यवस्था अलग-अलग है। अतः केवल कल्याणके लिये कल्याण विभागको एवं पुस्तकोंके लिये पुस्तक-बिक्री-विभागको पत्र तथा मनीऑर्डर आदि अलग-अलग भेजना चाहिये। पुस्तकोंके ऑर्डर, डिस्पैच अथवा मूल्य आदिकी जानकारीके लिये पुस्तक प्रचार-विभागके फोन (0551) 2331250, 2334721 नम्बरोंपर सम्पर्क करें।

2. कल्याणके पाठकोंकी सुविधाके लिये कल्याण-कार्यालयमें दो फोन 09235400242/09235400244 उपलब्ध हैं। इन नम्बरोंपर प्रत्येक कार्य-दिवसमें दिनमें 9:30 बजेसे 12:30 बजेतक एवं 2.00 बजेसे 5.00 बजेतक सम्पर्क कर सकते हैं अथवा kalyan@gitapress.org पर e-mail भेज सकते हैं। इसके अतिरिक्त नं० 9648916010 पर SMS एवं WhatsApp की सुविधा भी उपलब्ध है।

3. कल्याणके सदस्योंको मासिक अङ्क साधारण डाकसे भेजे जाते हैं। अङ्कोंके न मिलनेकी शिकायतें बहुत अधिक आने लगी हैं। सदस्योंको मासिक अङ्क भी निश्चित रूपसे उपलब्ध हो, इसके लिये सन् 2019 के लिये वार्षिक सदस्यता-शुल्क ₹250 के अतिरिक्त ₹200 देनेपर मासिक अङ्कोंको भी रजिस्टर्ड डाकसे भेजनेकी व्यवस्था की गयी है।

4. कल्याणके मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ सकते हैं।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०-गीताप्रेस, गोरखपुर—273005 (उ०प्र०)

प्रयागमें महाकुम्भ-पर्व

इस वर्ष महाकुम्भ-पर्वका दुर्लभ सुयोग प्राप्त है। श्रद्धालुओंको चाहिये कि इस वर्ष पौष शुक्ल पूर्णिमा (21 जनवरी 2019 ई०)-से माघ शुक्ल पूर्णिमा (19 फरवरी 2019 ई०)-तक पूरे एक माहतक कल्पवासी बनकर प्रयागमें रहें और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पुण्यतोया त्रिवेणीमें नित्यप्रति स्नान-लाभ करते हुए धर्मानुष्ठान, सत्संग तथा दान-पुण्य करें। महाकुम्भ-पर्व-मेलामें गीताप्रेसके द्वारा पुस्तकोंका विशेष स्टॉल लगाकर यथासम्भव अपने प्रकाशनोंको प्रदर्शित एवं उपलब्ध करानेकी चेष्टा है। महाकुम्भ-पर्वके स्नानके मुख्य पर्व इस प्रकार हैं—

अर्धकुम्भ-स्नानकी मुख्य तिथियाँ इस प्रकार हैं—

1. मकर-संक्रान्ति	दिनांक 15-01-2019 ई०	मंगलवार
2. पौष शुक्ल पूर्णिमा	दिनांक 21-01-2019 ई०	सोमवार
3. मौनी अमावस्या	दिनांक 04-02-2019 ई०	सोमवार
4. वसन्तपंचमी	दिनांक 10-02-2019 ई०	रविवार
5. रथसप्तमी	दिनांक 12-02-2019 ई०	मंगलवार
6. माघीपूर्णिमा	दिनांक 19-02-2019 ई०	मंगलवार

इस अवसरपर महाकुम्भ-पर्व (कोड 1300) पुनः प्रकाशित किया गया है।